सुमन : मनुष्य और स्रष्टा

डॉ० प्रभाकर श्रोत्रिय

प्रकाशक
कैलाश पुस्तक सदन
ग्वालियर • भोपाल

प्रकाशक

कैलाश पुस्तक सदन

पाटनकर बाजार, ग्वालियर (म. प्र.)

शाखा :

हमीदिया मार्ग, भोपाल (म. प्र.)

प्रथमावृत्ति : १०००

१९७१

मूल्य : रु० १०.००

मुद्रक : श्री माहेश्वरी प्रेस, गोलघर, वाराणसी-१

परम स्नेही
सुनील शाह
के नाम....



डॉ० शिवमंगल सिंह सुमन

अथ

मेरे मन में डॉ० शिवमंगल सिंह सुमन के व्यक्तित्व के प्रति आरंभ से ही एक विशिष्ट आकर्षण रहा है. पहली बार मैंने उन्हे मंच पर देखा था. 'प्रिय आज नही कल ...कल....कल...' कविता-पाठ की छवि मुझे भा गई थी. इसके बाद कई बार उन्हे सुना. संयोग से कक्षा में पढ़ा भी. फिर वे मेरे परम आचार्य हो गए. उनके व्यक्तित्व की गरिमा और अद्भुत सौजन्य ने परोक्ष में भी जीवन के लिए मार्ग दिखाया. इधर, उनकी अनेक कविताओं ने मन को छुआ. उनके बारे में जो सही-गलत कहा गया, उस पर कुछ कहने को जी हुआ. उनके व्यक्तित्व और कविता की बहुत बातें अच्छी लगीं तो कुछ से मैं असहमत भी हुआ. मैंने उनपर मुक्त रूप से लिखा और जब लिखा अनासक्त भाव से; व्यक्तित्व और कृतित्व के सारे गुण दोषों का अपनी समझ से विवेचन करते हुए लिखा. इस पुस्तक के कुछ लेख १९६२ से १९६९ के बीच विविध पत्र-पत्रिकाओं में छप चुके है. एकाध आकाशवाणी से भी प्रसारित हुआ है.

मैं हरबर्ट रीड के इस कथन से सहमत हूँ कि 'आदमी का व्यक्तित्व समय के प्रवाह मे तैरते बर्फखंड की तरह बाहर से बहुत कम दिखाई देता है. बाहर से जो कुछ दिखता है उसका कई गुना वह भीतर है.' कवि के भीतर झाँकने की एक मामूली खिड़की है—उसकी कृति; लेकिन उसमें से गहन अंतराल को झाँकना एक तीखी, एकाग्र और सुचिंचित दृष्टि का काम है. मेरी सामर्थ्य सीमित थी—अब भी है; लेकिन मैंने यह खतरा तब भी उठाया था और अब भी उठाया है. इसलिए सुमन को समग्रत: समझने के प्रयास मे उनके कर्तृत्व का आलोड़न किया है. जो कुछ मुझे मिला उसे मैंने यथासंभव नि:संग और तटस्थ विश्लेषक-दृष्टि से अभिव्यक्ति दी है. मेरा यह दावा नहीं है कि मेरी विधि या उपपत्तियाँ सही हैं, संगत हैं या निभ्रन्ति हैं. मैंने कहा है कि मेरे पास मर्मभेदक दृष्टि, अपेक्षित साधना और अभि-व्यक्ति की यथेष्ट सामर्थ्य नही है. लेकिन मैंने जो कहा है वह अपने मन के विरुद्ध नहीं कहा है.

सुमन जनता के आदमी और उसी के कवि है. कोई भी अपनी उँगली से उन्हे छू जाता है और अपने संवेदन उन पर मढ़ देता है. उन संवेदनों को पढ़कर भ्रांत होने की अपेक्षा मैंने स्वयं सुमन को पढ़ा है—व्यक्तित्व को भी और कृतित्व को भी—इसका केवल यही अर्थ है कि मैं आक्रांत नही हूँ.

एक ऐसे कवि के सम्बन्ध में, जिसका अभी ठीक-ठीक अध्ययन नहीं हुआ है; अनेक विश्वविद्यालयों में जिज्ञासु छात्र जिसे समझने की; और जिसके बारे मे कुछ कहने की कोशिश कर रहे हैं—फतवे देना, या उसके बारे में घोषणाएँ करना या उसे पूरी तरह समझ लेने का अहंकार जताना बहुत मूर्खतापूर्ण है. मैंने इससे बचने की कोशिश की है.

सुमन गतिशील कवि है, उनमे अभी बहुत-सी संभावनाएँ हैं. उनके सम्बन्ध में अभी अंतिम कुछ नहीं कहा जा सकता. मेरी समझ में जितना कहा जा सकता था, मैंने यहाँ कहा है. इतना ही.

पुस्तक पूरी हो जाने पर भी मुझे अधूरी लगी थी. मैं चाहता था कि यदि अपने बारे में डॉ० सुमन कुछ कहने को राजी हो जाएँ तो पाठक मेरे विश्लेषण की खामियाँ दूर कर सकेंगे और पुस्तक सही माने में कवि को समझने में सहायक सिद्ध होगी. मुझे सचही, खुशी है कि डॉ० सुमन ने इस दुधारे मौके पर भी अपने सौजन्य और उदारता का परिचय दिया. 'वक्तव्य के घेराव मे' उनका अपने विषय में कदाचित पहली बार सबसे विस्तृत, स्पष्ट और दो टूक वक्तव्य है.

उन विद्वानो और मनीषियों का, जिन्होंने पाण्डुलिपि आद्यंत पढ़कर अपनी प्रतिक्रिया से मुझे अवगत कराया है—मैं हृदय से कृतज्ञ हूँ. कविवर बच्चन ने तो पाण्डुलिपि के पचीसों स्थल रेखांकित कर मेरे लेखक को ठीक मौके पर आश्वस्त किया है. वे अध्ययन, चिंतन और विश्लेषण की सारी यातना के मर्मज्ञ हैं और जानते हैं कि लेखक को भीतर से किस जगह सहारा दिया जा सकता है.

अपने प्रकाशक अग्रवाल बंधुओं और श्री माहेश्वरी प्रेस के कर्त्ताओं को धन्यवाद दूँ कि उन्होंने मेरी भावना को ठीक तरह से प्रस्तुत करने का दायित्व—अपनी प्रतिष्ठा के अनुरूप ही—निभाया है.

अंत में मैं अपने सुहृद्वर कलाकार सच्चिदानन्द नागदेवे के प्रति हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने इस पुस्तक को कलात्मक आवरण से सज्जित किया है.

प्रभाकर श्रोत्रिय

हिन्दी-विभाग
हमीदिया महाविद्यालय
भोपाल (म. प्र.)

वक्तव्य के घेराव में

कवि अपनी विशेष अन्तर्वाह्य स्थिति में कुछ कह जाता है और समीक्षक अपनी स्थिति और आग्रह के अनुसार सम्मति दे देता है. इससे कई वार कवि का सच्चा रूप अव्यक्त रह जाता है. मैंने डॉ० शिवमंगल सिंह सुमन से निवेदन किया कि वे अपनी कवि-प्रवृत्ति, अंत:वाह्य परिवेश, चिन्ता-धारा और समीक्षकीय आपत्ति से सम्बद्ध प्रश्नों का समाधान कर के अपने अध्येताओं का मार्ग प्रशस्त करें, ताकि भ्रान्ति की धुन्ध मिटे और उनका आशय स्पष्ट हो. कविवर सुमन ने अपनी सदाशयता का कष्ट भोगते हुए, यह वक्तव्य चिर-परिचित व्यस्तता के वीच संकोच पूर्वक दिया है. —लेखक

मैं प्रगति और प्रवाह के प्रति प्रतिवद्ध हूँ. किसी विशेष चिन्तन-धारा या वाद से न तो अपने को जोड़ता हूँ, न जोड़ना चाहता हूँ. यदि प्रवृत्ति की दृष्टि से देखा जाय तो मैं मूलत: रोमेंटिक हूँ—अपने सम्पूर्ण विद्रोही, स्वतन्त्र और रागात्मक अर्थों में. आगे चलकर मुझे प्रगतिवादी धारा का कवि कहा गया. वस्तुत: मैंने सशस्त्र क्रान्ति की राष्ट्रीयता के द्वार से प्रगतिवाद में प्रवेश पाया; फिर भी उसके वाद में मैं वँध नहीं पाया—या मुझे वह बाँध नहीं पाया. इसलिए जैसे-जैसे परिवेश वदलते गए, मैं सहज भाव से अपनी वात कहता गया.

मैंने जब काव्य-रचना आरम्भ की, तो मेरे मानस की रागात्मकता ने तत्कालीन छायावादी प्रवृत्ति से सहज सहज ही एकरूपता स्थापित कर ली. उस समय छायावादी काव्य अपने शिखर पर था. मैं उस काल में ग्वालियर से वनारस गया ही था, जहाँ 'प्रसाद' नवीन के अभिनन्दन में माधुर्य का कायाकल्प कर रहे थे. विद्यार्थी काल में 'आँसू' का पारायण हमारे कंठ मे जीवन की साँस की तरह

रस-वस गया था. रागात्मक भावना के इसी उन्मेष की दशा में ही कविता स्थूल और सूक्ष्म का विनिमय कर रही थी. यद्यपि मेरा जयशंकर प्रसाद से तो अधिक सान्निध्य नहीं हो पाया था, तथापि उनके मादक काव्य का प्रभाव—जो मुख्यतः वियोगाश्रित था—मेरे गँवार, तरुण मन को नये सन्दर्भ प्रदान कर रहा था. इधर महादेवी की वेदना भी इस 'प्रसादी मादकता' में घुली-मिली लगी. पन्त की शब्द-योजना उस समय बड़ी भाई. छायावाद के सबसे प्राणवान कवि निराला का प्रभाव—आगे चलकर मेरी समाजोन्मुख अथवा क्षत्रियोचित ('क्षतात् किलत्रायत इत्युदग्र क्षत्रस्य शब्दो भुवनेपुरूढः'-रघुवंश.) कविताओं पर पड़ा.

'हिल्लोल' में मेरे उन्मत्त मन की राग-भावना, उत्कंठा और व्यग्रता प्रकट हुई है. इन अभिव्यक्तियों की प्रामाणिकता के लिए मुझे कुछ कहना नहीं रुचता, पर प्रभाकर ने इस विषय में प्रश्नों की झड़ी लगाकर मुझे संकेत करने को विवश कर दिया है अन्यथा मैं मानता हूँ कि जब कवि अपने सम्बन्ध में अधिक वक्तव्य अथवा फतवा देने लगे तो समझना चाहिए कि उसकी प्रतिभा अब अवसान की ओर है. यह सच है कि यदि ये रूमानी अभिव्यक्तियाँ मेरे आत्मानुभव की परिणति नहीं है, तो या तो वे छायावादी फैशन के रूप में लिखी गई है, या केवल कल्पना अथवा भाव-तरंग (Fancy) की व्यंजना के रूप में.

मैंने कभी फैशन या प्रदर्शन के लिए कविता नहीं की. अपने प्रत्यक्ष बोध (Perception) के आधार पर ही काव्य-सृष्टि की है. प्रेम में व्यक्त सौन्दर्याकर्षण, साहचर्य, अनुनय, उपालम्भ, व्यग्रता, आग्रह और आलोड़न—मेरा निजी है. इन सबसे मैं विलोड़ित हुआ हूँ. इससे अधिक कुछ कहना समीचीन प्रतीत नहीं होता.

'हिल्लोल' मे जीवन और जगत् के प्रति तीव्रतम जिज्ञासा, विस्मय, राग और सम्भ्रम के भाव है. मानसिक परिवेश ही रोमेंटिक था, फिर विश्वविद्यालय का अपना भावुकतापूर्ण वातावरण ! मेरे मन की हिल्लोल इसी अन्तःवाह्य परिवेश मे तरंगित हो रही थी. किसी हद तक उसे वासना कहने में भी संकोच नहीं, क्योंकि इस सृष्टि को ही 'वासना वासुदेवस्य' कहा गया है.

'हिल्लोल' के कवि के रूप में मैं छायावाद की वायवीयता, रहस्यावरण और एक खास किस्म की फन्तासी से भिन्न चल रही यथार्थवादी रूमानी प्रवृत्ति से सम्बद्ध था.

'जीवन के गान' मेरी भटकन और पथ की खोज को व्यक्त करते है. यहाँ मेरी रूमानी प्रवृत्ति राष्ट्रीय भावना से गुँथ गई है. जिस तरह जयशंकर 'प्रसाद'

राष्ट्रीयता और प्रेम की सहवर्ती यात्राएँ करते हैं, वैसे ही मैंने रूमानी वृत्ति को पहले राष्ट्रीयता से जोड़ा और फिर उसमें समाहित कर दिया. 'मेरा पथ मत रोको रानी' आदि कविताएँ इसी भावना की द्योतक है. इन कविताओं मे कभी राष्ट्रीय-भावना रूमानी भावना में मिल गई हैं, तो कभी रूमानी आरम्भ अन्ततः राष्ट्रीय धारा मे विनिमज्जित हो गया है. यह सम्मिलन मेरे वाह्यपरिवेश और अन्तःवृत्ति का सम्मिलन था. क्योकि अन्तःप्रवृत्ति और मूल संस्कार—जैसा कि मैंने कहा है—तो रूमानी थे और वाहर का सारा माहौल लाठी, गोली और दमन के तूफान से क्षुब्ध था. इन विरोधों के संयोजन ने विचार और उद्देश्य के स्तर पर मुझे तरह-तरह के खेल खिलाए। याने मैं पथ की टोह में भूलने-भटकने का मजा लेता रहा. यह स्वाभाविक भी था. जो चलना चाहता है, उसे भटकना ही पड़ता है. मेरी ईमान-दारी यही है कि मैंने आसक्ति को कभी अनादृत नहीं किया. मेरा तो यह दर्शन रहा कि 'जो भी अभाव भरना होगा, चलते-चलते भर जायेगा.'

'जीवन के गान' में भी मेरे इसी गति-दर्शन ने राष्ट्रीयता के एक स्पष्ट मोड़े पर मुझे ला खड़ा किया, और एकवारगी मेरी मूल रूमानी भावना से पृथक् मुझे क्रान्ति की ज्वाला मे झोंक दिया, यहीं प्रसंगतः मे कह दूँ कि मेरे अनगढ़, भावुकयुवा मन पर सबसे पहले गाँधी का प्रभाव पड़ा था, लेकिन इससे पहले कि वह प्रभाव मेरी कवि-चेतना का अंग वन कविता में उतरता, मुझे सशस्त्र क्रान्ति की लपटों ने विमोहित कर लिया. चन्द्रशेखर आजाद, भगतसिंह आदि की क्रान्ति-कारी भावना से मेरा मन अभिभूत हो उठा. जब मैं मैट्रिक मे था तभी भगत-सिंह के वीरोचित वलिदान ने मुझे झकझोर दिया था. इस प्रभाव के सहारे और ओज के आवेग मे मैं क्रान्तिकारियों के अखाड़े का लतमार वन गया. मेरी रूमानी विह्वलता का इस वाहरी क्रान्ति में परिवर्तन एक स्वाभाविक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया थी. इसी समय मार्क्सवादी श्री रुस्तम सैटिन से सम्पर्क हुआ. उनके निरन्तर साहचर्य से मैं मार्क्सवादी विचार धारा से अधिकाधिक प्रभावित होता गया. सैटिन जी वनारस मे थे और मैं ग्वालियर मे. वे जब भी ग्वालियर आते थे, हम दोनों घंटों फूल वाग में अंगारों की वातें करते थे.

सशस्त्र क्रांति का मेरा मार्ग गाँधी की अपेक्षा मार्क्स के अधिक पास था. इसलिये मैं मैथिलीशरण गुप्त, सोहनलाल द्विवेदी या माखनलाल चतुर्वेदी की तरह राष्ट्रीय भावना वाली कविताएँ कम लिख सका. मार्क्स और क्रान्तिकारियों का माध्यम एक था, परन्तु मार्क्स के पास जो वैज्ञानिक भौतिकवाद और नई व्याव-हारिक दृष्टि थी, वह मुझे अपने राष्ट्रीय जीवन के लिये उपयुक्त प्रतीत हुई. इधर

क्रान्ति के अग्रदूत भगतसिंह ने फाँसी के समय दिये गए अपने वक्तव्य में साम्यवादी मार्ग अपनाने की सलाह दी थी, इसलिए मेरी मानस-धारा मार्क्सीय धारा की ओर स्वभावतः मुड़ गई.

यही प्रसंगवश कहना चाहूँगा कि मैं **प्रगतिवाद रचनाओं को सच्चे अर्थ में राष्ट्रीय मानता हूँ.** क्योंकि ये भी जन-कल्याण की भावना से ही आन्दोलित थीं. मार्क्सवादी परिवेश में उनका अंतर्राष्ट्रीयता से विरोध हो ही नहीं सकता. अन्तर केवल इतना था कि जहाँ एक ओर राष्ट्रीय कविताएँ वर्ग-भेद, ऊँच-नीच आदि को भूल कर केवल आजादी के प्रति अस्पष्ट विद्रोह की व्यंजना करती थीं वहीं प्रगतिवाद, साम्राज्यवाद के साथ-साथ पूँजीवाद के विरूद्ध जिहाद बोलने का दम भरता था. यह भी स्मरणीय है कि प्रगतिवाद की एक वैश्विक भूमिका भी थी. इसलिये कई बार उसकी व्यापक भावना में राष्ट्रीयता अंतर्निहित होती थी. लोगों ने केवल आजादी के लिए लिखी रचनाओं को ही प्रायः राष्ट्रीय कहा. मनुष्यता के परिपार्श्व में लिखी वर्ग-संघर्ष की कविताएँ—जिनमें भले ही साम्राज्यवादियों के विरूद्ध शखनाद हो—प्रगतिवादी कविताएँ कही गई. यह तो आलोचकों के द्वंद्व युद्ध की बात है कि किसमें पूर्वापर विवेक अधिक था, लेकिन इतना अवश्य कह सकता हूँ कि **प्रगतिवाद का लक्ष्य बिना किलौलपेट के राष्ट्र-कल्याण और लोक-कल्याण था.** इसका अभाव किसी भी लेखक की दृष्टि को संकुचित और साम्प्रदायिक बना सकता है.

'प्रलय-सृजन' काल में मैं विश्लेषण के दौर से गुजर रहा था. मेरा यह काल प्रगतिवाद के सम्पूर्ण आवेश का काल है, इसलिये इसमें वैचारिक मूल्यांकन की सुस्थिरता समय सापेक्ष्य है. आवेश के कारण कलापक्ष की उपेक्षा होना स्वाभाविक है। मुझे यह स्वीकार करने में संकोच नहीं है कि 'प्रलय सृजन' काल में मुझ पर बाह्य परिवेश का प्रभाव अधिक है, अंतर्दर्शन की प्रवृत्ति कम, परन्तु 'विश्वास बढ़ता ही गया' मेरी प्रगतिशील आस्थाओं की स्थिरता का काल है। स्थिरता में विस्तार और गहराई दोनों आ जाती है. 'विश्वास बढ़ता ही गया' में मेरी चिन्ता एक ओर विश्वाभिमुख हो गई है और दूसरी ओर राष्ट्रीय चिन्ता भी वृहत्तर सांस्कृति परिवेश, सामाजिक सन्दर्भ और मार्क्सीय दर्शन से समन्वित हो गई है. 'एशिया की आग' और 'मेरा देश जल रहा कोई नहीं बुझाने वाला' कविताएँ क्रमशः इसी प्रवृत्ति की परिचायक है. इस माने में मेरा प्रगतिवाद अपने ही 'प्रलय-सृजन' तथा अन्य समकालीनों के सीमित प्रगतिवादी सन्दर्भों से बच कर निकल गया. 'विश्वास बढ़ता ही गया' में अन्तर्दर्शन और बाह्य परिवेश में एक

अन्विति है और कला पक्ष संवर गया है. भारतीय सांस्कृतिक परिवेश में, मार्क्सीय-चिन्तन का गुम्फन करते हुए, अधुनातन लोक-चेतना और लोक-कल्याण की भावना का रूपायन मेरी लम्बी कविता 'जल रहे हैं दीप जलती है जवानी' में हुआ है. इस पुस्तक में इसे मेरी सर्वश्रेष्ठ प्रगतिवादी उपलब्धि ठीक ही कहा गया है.

मैंने अपनी प्रगतिवादिता को कभी भी गुटबाजी में उलझने नहीं दिया. इसके विपरीत व्यापक और विवेक सम्मत आत्म निर्णय के आधार पर ही मैंने उसका स्वरूप सरजा है. इसका प्रमाण यह है कि जब सन् बयालीस के भारतीय स्वातंत्र्य आन्दोलन को मित्र राष्ट्रों की सहानुभूति मे फासिज़म के विरुद्ध लड़ने के लिये साम्यवादियों द्वारा निंदित किया जा रहा था, तब मैंने बयालीस की क्रान्ति के भी ऐतिहासिक महत्व को स्वीकारा था. अमरीकी मई दिवस और चौरा-चौरी काण्ड को भी मैंने क्रान्ति का समान पीठासन दिया था. यदि मुझमें तथा कथित वादविमूढ़ जड़ता होती तो मैं बापू पर अपनी महत्वपूर्ण कविताएँ नहीं लिख पाता. गाँधीवादी कवि स्व० सियारामशरण गुप्त ने अपने सहज वात्सल्य में इन्हें गाँधीयुग की श्रेष्ठतम उपलब्धि कह कर अपने आशीर्वचन के व्याज से मेरी अनवरुद्ध भावना और चेतना को प्रमाणपत्र ही दिया है. गाँधी की अप्रतिहत साधना और वर्चस्व का मैं कायल रहा हूँ. उस लोककल्याणकारी आराधना का कौन प्रशंसक नहीं होगा ? इसीलिये खूनी क्रान्ति की विचार धारा के बावजूद लोक-साधना की इस दिव्यतम मूर्ति ने मुझे अभिभूत किया था. सतही दृष्टि इसमें विरोध देखती है. परन्तु मुझे अपनी प्रगतिवादिता, क्रान्ति और गाँधी के प्रति भावाकुलता में कहीं विरोध नहीं दीखता. क्योंकि मूल में जनहित को लेकर मैं चला हूँ—वाद की जड़ता को लेकर नहीं. इसलिए जन-कल्याण की भावना रखने वालों के प्रति, माध्यम आदि की वैचारिक असहमति के बावजूद, मैं उपेक्षा-भाव कभी नहीं रख पाया. इसी प्रवृत्ति ने मुझसे देश-काल और विचारों की विविध और जिज्ञासा भरी यात्राएँ कराई है।

यहीं मैं स्पष्ट कर देना चाहूँगा कि मेरे सम्पूर्ण कर्तृत्व में व्यक्त प्रगतिवादी विचारधारा मेरी प्रिय विचारधारा है और इसे व्यक्त करने के लिए मैं रत्तीभर भी पश्चात्ताप नहीं करता. क्योंकि साहित्य और देश के इतिहास में एक विशिष्ट दौर में लोगों ने कविता-कविता या दृष्टि-दृष्टि के भेद को न समझते हुए साम्यवाद के विरुद्ध एक ज़िहाद छेड़ दिया था. जिसकी चपेट में उन्होंने व्यावसायिक विदेशी एजेन्टों और घटिया उग्र मनोवृत्ति के अविवेकी लोगों की कोटि में सबको बिठा दिया. मैं कभी इस पर अलग से लिखूँगा. इस समय इतना ही अलम् है कि

मैंने मार्क्सीय दर्शन को अपने देश और काल के परिप्रेक्ष्य में, राष्ट्र-कल्याण के सन्दर्भों में समझा है। एक आत्म-निर्भर, सुखी, सार्वभौम राष्ट्र के रूप में भारत की कल्पना के लिये मुझे मानवीय संवेदना का यह क्रियात्मक, वैज्ञानिक और विवेक सम्मत दर्शन उपयुक्त प्रतीत हुआ. अपनी मातृ-भूमि के प्रति; उसके संस्कारों और साधनाओं के प्रति मेरा गहरा ममत्व मेरी रचनाओं में प्रतिबिंबित है—

'जिन उपकरणों से मेरी देह बनी है,
उनका अणु-अणु धरती की लाज बचाए.'

—पंक्तियाँ मेरी इसी आस्था की परिचायक है.

अस्तु, 'विश्वास बढता ही गया' मेरे समाज-दर्शन को व्यक्त करने वाली प्रतिनिधि रचना है. प्रभाकर श्रोत्रिय का यह कहना मुझे तर्क संगत प्रतीत होता है कि मेरी समाज, संस्कृति, राष्ट्र और विश्व विषयक मान्यताओ का और किसी हद तक मेरी समाजोन्मुखी कविताओं के कलापक्ष का मूल्यांकन बेझिझक इसी कृति के आधार पर किया जा सकता है.

'विश्वास बढ़ता ही गया' के पश्चात् 'पर आँखें नही भरी' का आयाम आविर्भूत हुआ. इसमे प्रेम और सौन्दर्य विषयक कविताओ का प्राधान्य है. जो धारा मैं 'हिल्लोल' मे छोड आया था, उसका अंत:सलिला रूप पुन: सतह पर आ गया. इसके बाद मैं कभी भी इस प्रवृत्ति के प्रति पूर्णत: समर्पित न हो सका. इसलिए 'पर आँखें नही भरी' मेरी प्रणय-व्यंजना की बेलौस उपलब्धि है.

मुझसे पूछा जा रहा है कि लोकोन्मुखी चेतना का मार्ग छोड़कर मैं सहसा प्रेम-रोमांस के इस पुराने मार्ग पर क्यो लौट आया ? क्योंकि विषमता तो ज्यों की त्यो थी और समस्याएँ समाप्त नही हुई थी—बल्कि और बढ़ रही थी. यह तर्क कदाचित सही हो, परन्तु भारतवर्ष मे नवस्वतन्त्रता का विहान एक विशिष्ट आनन्द और उल्लास का आह्लाद लेकर आया था. इसलिए मेरा कवि एक क्षण के लिए स्वप्नो को ही सत्य मान बैठा था. अत: क्रान्ति-भावना के कारण रुकी दबी मूल प्रेम-सौन्दर्य की आन्तरिक गूँज कविता की बाँसुरी से फूट पड़ने को विह्वल हो उठी थी. अत: 'पर आँखे नही भरी' का पूरा युग कवि की सैलानी यात्रा का निर्व्याज लेखा-जोखा है. इसे लेखक के द्वारा 'Relief of Art' की संज्ञा देना मुझे ठीक ही प्रतीत हुआ. लेकिन इस काल मे भी मेरी सामाजिक चेतना मुमूर्षु नही हो पाई है. बस क्रान्ति का विध्वंसक पक्ष, विशेष सर्जनात्मक पक्ष मे परिवर्तित हो गया है. 'कलाकार के प्रति' कविता मेरी इसी भावना का प्रमाण है—

'जब हाथ बिठालोगे सौ-सौ साँचों में
कंचन पिघलेगा जब सौ-सौ आँचों में
तब एक रेख का कहीं भराव भरेगा
तब एक रूप का आकर्षण निखरेगा'

यह नए भारत के निर्माण का सृजनात्मक पक्ष है. 'साँसों का हिसाब' भी एक तरह से इसी सृजनशीलता का आह्वान है. 'अब एक साँस भी व्यर्थ न जाने पाए' सतत् कर्म-मार्ग पर चलने के लिए सावधान करता है. ध्वंसात्मक विद्रोह के बाद सृजन का यह पक्ष गांधी और मार्क्स की सम्मिलित विरासत है. इसी पुस्तक में मेरी गांधी विषयक कविताएँ भी संग्रहीत हैं.

अतः प्रेम-व्यंजना के बावजूद मेरे व्यक्तित्व में समानान्तर लोकोन्मुख साधना—सरस्वती की तरह अन्तर्वर्ती ही सही—प्रवाहित हो रही थी, और पूरे वेग से प्रवाहित हो रही थी—'जन-भावना' की पहले की सी सबल अभिव्यक्ति की न्यूनता का मुझे बराबर अनुभव हो रहा था—

'करमें अध पर ही प्याला फूट गया है,
जैसे प्रभात का सपना टूट गया है'

लेकिन इस खेद-व्यंजना के बाद भी मेरे मन का आत्मविश्वास नहीं टूटा था. मैंने कहा था—'मैं धारा हूँ पीछे कैसे लौटूँगा ?' कविता, मुझसे अपेक्षा रखने वालों को 'आश्वासन' देती है, जो वस्तुतः मेरी प्रतिज्ञा है—

'मैं अब भी हूँ, वैसा ही मन का मानी
मैं गिरने दूँगा नहीं आंख का पानी
आश्वस्त रहा मुझसे मेरा सेनानी'
('पर आँखें नहीं भरीं' से)

मेरी मनः संरचना क्रमशः निगूढ़ होती गई। प्रश्न मुझे बेधते गये और कुछ काल मेरा इसी ऊहापोह में बीत गया. 'विंध्य-हिमालय' मेरी अन्तर्हित भावना, आकांक्षा और आशय को स्पष्ट करने वाली कृति है. उसमें बिखराव है पर बाहर की ओर नहीं, भीतर की ओर. प्रकृति का सान्निध्य किस तरह मनुष्य के भीतर एक वृहद् परिवर्तन कर देता है, इसका मुझे इस काल में बड़ा गहरा अनुभव हुआ है. इस कृति में मेरी रूमानी, प्रगतिवादी, व्यावहारिक, प्रेम विषयक, अन्तर्दर्शन सम्बन्धी तथा युग-बोध विषयक रचनाएँ संकलित हैं. मैंने इसमें हिचकते हुए ही सही, नई काव्यधारा का भी स्वागत किया है. मेरा विरोध इसके सतही पन से रहा है—

युगबोध या युग-धर्म से नहीं. क्योंकि मैं एक प्रगतिशील कवि होने के नाते जीवन की प्रगति और नये प्रवाह को सदा स्वीकारता आया हूँ.

'माटी की बारात' मेरा नया संग्रह आ रहा है. इधर सन् ६२ के बाद की रचनाएँ इसमें संकलित हैं. जब तक कृति प्रकाशित न हो जाये—इस विषय में कहना समीचीन न होगा.

अपने जीवन-दर्शन के विषय में पूछे गये प्रश्नों से मैं असमंजस में पड़ गया हूँ. इसका यह अर्थ नहीं है कि मैं इस विषय में स्पष्ट नहीं हूँ. बल्कि इसलिए कि इस प्रकार के दावे करना मैं नहीं चाहता. फिर भी केवल यही कहना चाहूँगा कि मैं सामाजिक कल्याण के प्रति प्रतिबद्ध हूँ. गति पर विश्वास करता हूँ. मेरा मार्ग गौतम की तरह मध्यम मार्ग है. मैं अति (Extreme) को अव्यवाहारिक उबाल मानता हूँ और हठ धर्मिता (Fanaticicm) से दूर रहना चाहता हूँ. मेरे मन में लक्ष्य साफ है मेरी आगामी काव्यधारा भी लोक-साधना का ही प्रतिरूप होगी. मैं अन्ततः व्यक्तिवाद का विरोधी और सामाजिकता का कायल हूँ. वह मुझे जहाँ भी प्राप्त होगी मैं बेहिचक स्वीकार करूँगा. मैं कितनी सामर्थ्य से इस भावना को व्यक्त कर सकूँगा और कर भी सकूँगा कि नहीं. यह मैं कुछ नहीं कह सकता—

'कवि की अपनी सीमाएँ हैं, कहता जितना कह पाता है,
कितना भी कह डाले, लेकिन, अनकहा अधिक रह जाता है'.

इस समय इतना ही.

शिवमंगल सिंह सुमन

कुलपति-निवास
देवास मार्ग, उज्जैन
ज्येष्ठकृष्ण १३, मंगलवार २०२७ विक्रमाब्द

आद्यन्त

म नु ष्य

- व्यक्तित्व : कुछ उभरी रेखाएँ
- अध्यापक : उपाध्याय या गुरु ?
- ऐन्द्रजालिक वक्ता
- प्रशासक : एक और चेहरा
- मानवीय पहलू : संघर्ष से संवेदना तक

व्यक्तित्व : कुछ उभरी रेखाएँ

भरावों के व्यक्ति को रेखाओं में ला उतारना—रंगों के सन्तुलन और गठन के कौशल से अपने को बचाने का प्रयास नही है, संक्षेप मे समूचे व्यक्तित्व को संकेतित करने की व्यग्रता का आग्रह इसमे माना जाए.

चिरगाँव, कोसानी और झगरपुर को साहित्यप्रेमी कभी याद न रख पाते, यदि वहाँ गुप्तजी, पंतजी और सुमनजी उत्पन्न न हुए होते तो.

जनकथाओ के नायक सुमन को रेखाओं में बाँधना बेहद उलझन भरा काम है.

जब मै कहता हूँ—'डॉ० सुमन विद्वान् है.' तो कुछ लोग ऐसे भी है, जो कहते है—'वे अच्छे वक्ता है.' मैं कहता हूँ—'वे कवि है.' वे कहते है—'प्रिंसिपल है.' मै कहता हूँ—'हाँ है प्रिंसिपल.' वे उड़ती हँसी की हवा मे एक शब्द उछाल देते है—'कवि है.' थोड़ा झुँझलाता हूँ—'हजार बार है कवि.' वे कहते हैं—'थे, और सिर्फ रिसाइटर.' मै कहता हूँ—'गांधीजी के बड़े भक्त है.' वे ऊपर मुँह उठाकर धार्मिक भाव से हाथ जोड़ कर यह साखी पढ देते है—'लाली मेरे लाल की, जित देखूँ तित लाल.' मैं कहता हूँ—'जवाहरलाल जी के बड़े भक्त है, उन्हे चाहते है, उपासक की तरह' वे कहते हैं—'चन्द्रशेखर आज़ाद की पार्टी मे काम किये हुए पक्के क्रान्तिकारी है.' तो मै बुराई पर उतर जाता हूँ—'एरिस्टोक्रेटिक, कार, बँगला, सूट, सिगरेट......' वे फौरन पैंतरा बदलते है—'अजी आप क्या जानें उस आदमी को, आजादी के आन्दोलन मे स्वदेशी वस्त्र अपनाये थे ! सन् ५० तक तो सिर्फ खादी पहनते थे, घड़ी, फाउन्टेन भी छोड़ दिये थे. कुछ न हो तो हाथ नही फैलाते, है—तो भोगते हैं.'

इन रेखाओं से यदि सुमन का चित्र बनाया भी जाय तो उसमे अनेक चेहरे उभर आते है—उनके—जो उन्हे प्यार करते है, जो ईर्ष्या करते है. शायद कभी तटस्थ दृष्टि से देखने पर डॉ० सुमन अपने चेहरे पर आरोपित चेहरे हटाकर अपना स्पष्ट चित्र देख पाएँ !

उनके व्यक्तित्व की बहुमुखता शायद उनके प्रति विविध दृष्टिकोणों, सन्देहों, जिज्ञासाओं और प्रश्नों का कारण है.

जीवन और जगत् के प्रति उनकी निष्ठा बहुत कुछ बिखरी होने और सर्वग्रासी होने के कारण कभी वे 'इस' रूप में दिखाई देते हैं, कभी 'उस'.

संचारी वासनाओं की तरह उनके जीवन मे उठी उमंगें और धुनें एक क्षण को तेजी से उभरती और बाद में अपनी लय छोड़कर लुप्त हो जाती हैं. समुद्र की तरह उनमें लहर आती है या बुखार के दौरे की तरह कोई बात उनके तन-मन मे एक साथ छा जाती है और फिर खो जाती है. (उनका प्रथम कविता-संग्रह 'हिल्लोल' अवचेतन के इसी बोध का प्रतीक लगता है.) इसलिए एक तरंग के आधार पर सम्पूर्ण सुमन की व्याख्या करने के अहमन्य लोग उन्हे बाँधने के स्वयं गुनहगार बन जाते हैं.

किसी ऐसे गुलाब को जिसमें रंग-बिरंगी पंखुरियाँ हों या अलग-अलग टचेज हों, देखकर भी हम कह सकते हैं—यह गुलाब है. विविधता के बावजूद भी कोई सामान्य बात है, जो रंगों को पार कर उसके मूल गुणधर्म की पहचान कराती है. इस बात को जो समझ सकता है—वह सुमन को समझ सकता है.

यदि डॉ० सुमन को अपने लिए रेल की पटरियों पर सोनेवाले, जुलूस निकालने, हड़ताल करने और प्राणों की तरह प्यार करनेवाले लोग मिले हैं; तो उन्हे रूमानी कथा के नायक बनाकर कलंकित करने के प्रयास भी कम नहीं हुए हैं. एक घटना यों है—

गोपाल मन्दिर के चौक में सनसनीखेज भरी सभा.....माधव कालेज की प्रोफेसरी का जमाना था...लोग इकट्ठे हुए. "सुमन की बखिया उधड़ जायेगी." एक वेश्या उपस्थित हुई और सारे लोग स्तब्ध !

"मुझे तो पता नहीं कौन भाई हैं, सुमन जी ? उनकी शक्ल भी मैंने नहीं देखी, उन पर बदचलनी का जुर्म लगाने और मुझसे ताल्लुक रखने की बात कहने के लिये मुझे यह सौ का नोट दिया गया है." और वेश्या ने नोट दिखाया.

नोटवालों के मुँह पर ऐसा रंग पुत गया कि स्याही भी फीकी लगे, और उस वेश्या के मुँह पर ऐसा रंग चढ़ गया, जो राजपूत-काल में जौहरानियों पर चढ़ जाता था. प्रश्न उठता है—वह वेश्या क्यों हुई ? दो रुपये.....और वह वेश्या ! इस समय उसे सौ रुपये मिले थे—सिर्फ एक झूठ कहकर वह कितने आघातों से बच सकती थी ? वहाँ भी एक नैतिकता है !......

सुमनजी ने उस पर कोई कविता नहीं लिखी, कोई संग्रह उसे भेंट नहीं किया—पर इस घटना का उनके मानसिक गठन पर कितना प्रभाव हुआ होगा—कौन कहे ?

अहमदाबाद मे एक प्रतिष्ठित सज्जन से मिला था. उन्होंने उज्जैन के हाल-चाल पूछे. साहित्य का छात्र जानकर कहा—"अरे भाई डॉ० सुमन से कहिए तो कि हमने कितनी चिट्ठियाँ दीं ? तीन-तीन जवाबी तार ! एक का भी जवाब नहीं ! हम उन्हे दीक्षान्त समारोह में महादेवी, दिनकर की परम्परा में बुलाना चाहते है."

"जी, कहूँगा. व्यस्त बहुत रहते है."

"हाँ, सो तो है ही."

प्रश्न उठता है डॉ० सुमन इतने व्यस्त क्यों रहते हैं ? बहुत से कवि हैं, प्रिंसिपल है, मन्त्री हैं, साहित्यकार हैं—इतने व्यस्त तो वे भी नहीं रहते !

एक महाशय आए हैं, उनकी माँ सीरियस हैं, ट्रान्सफर करवा रहे है. (डॉ० सुमन से काम करवाने के लिये कई माताएँ स्वर्गवासी हुई हैं.)

एक महाशय आए है, दिल्ली जा रहे हैं, पत्र लिख रहे हैं.

एक शिष्य के पिता चल बसे—संवेदना के लिए साइकल उठाई और दौड़े जा रहे हैं.

'नेशनल डिफेन्स' के लिए (फोकटिया) कवि-सम्मेलन है—अध्यक्षता कर रहे हैं.

एक लड़के का एडमीशन अटक गया है—रोना सुन रहे हैं; पीठ पर हाथ फेर रहे है.

एक साहित्यकार आए हैं—कविता सुन-सुना रहे हैं.
सिंडिकेट के जन आए हैं—प्रस्ताव बनवा रहे हैं.
अतिथि आए हैं—खाना खिला रहे हैं.
जननेता आए हैं—प्यार दिखा रहे हैं.
दर्शन करने आए हैं—दर्शन दे रहे हैं.
मिस्त्री आए हैं—कालेज बिल्डिंग की चर्चा कर रहे हैं.
बैठक आयोजित कर रहे हैं, जा रहे हैं.

कालेज का काम कर रहे हैं, पूजा कर रहे हैं, चाय पी रहे हैं, नहा रहे है, भाषण दे रहे हैं, फोन कर रहे है, कोई एक काम हो तो बात ! सब कामों

के लिए सुमन जिम्मेदार, सब का दर्द एक आदमी बँटाए, सब की खुशी में एक आदमी ! माँब बिगड़ रहा है—'सुमन को अड़ा दो', फोटू की बोली सुमन लगा रहे हैं, कक्को-कम्मो आई हैं—स्वागत कर रहे हैं.

ऐसा मल्टीपरपज आदमी मैंने दूसरा नहीं देखा ! किसी का जी नहीं दुखाए. घर के काम के लिये फुर्सत नहीं. चौका लिए घंटों श्रीमती इन्तजार करे ! छोटे लड़के अरुण का मामला था. परीक्षा में नम्बर उलटे-सुलटे हो गये थे—एक फोन से काम चल सकता था, उसे फर्स्ट क्लास आ सकता था—पर पापा को फुर्सत नहीं !

उनके दरबार (माधव कॉलेज में प्राचार्य का कक्ष) में कई बार गया, अकेले में चर्चा करना है, पर जमे हैं लोग ! काम के, बे काम के ! लड़के परेशान हो रहे हैं, पर 'सुमनजी' किसी से यह नहीं कह सकते कि फिजूल न बैठें और प्यार करनेवालों से नहीं भी कैसे की जाए ? प्यार का भार बहुत भारी होता है ! एक बार मैंने उनके द्वारपाल से पूछा—"सुमनजी अकेले कब मिलते हैं ?" छूटते ही उसने कहा—"साहब सिर्फ पाखाने में अकेले रहते है !"

डॉ० सुमन ज्यादातर समूह के व्यक्ति हैं—बहुत कुछ 'आउट वर्ड.' उन्हें निज को घेरे रहनेवालों से शिकायत है. पर यदि किसी दिन एक भी व्यक्ति उनसे मिलने न जाए तो दूसरे दिन वे लोगों को घर-घर बुलाने जाएँ—"कहो बन्धु ! प्रसन्न तो हो ! कोई आधि-व्याधि तो नहीं ?" समूह सुमन की मजबूरी का पर्याय है.

डॉ० सुमन के प्राचार्य बन जाने से माधव कालेज का नक्शा बदल गया है. विक्रम विश्वविद्यालय के अवरुद्ध कार्यों में गति आ गई है. इस दिशा में उनका दाय हमेशा स्वीकारा जाएगा. आज माधव महाविद्यालय विद्वानों के आकर्षण का केन्द्र होता जा रहा है. देश भर के विद्वानों को यहाँ ला जुटाना डॉ० सुमन की साध है. उज्जैन में आयोजित समस्त सांस्कृतिक, शैक्षणिक कार्यक्रमों का एकमात्र स्थान माधव कालेज हो जाने से, शिक्षा में होनेवाले अवरोध को सभी लोग अनुभव करते हैं. पर डॉ० सुमन ने मंच और कालेज को इस कदर जोड़ दिया है कि उनके लिए इनके बीच रेखाएँ खींचना कठिन है—इस आरोप के बचाव में दिए गए यदि उनके भावुक वक्तव्य को मान भी लें तो भी इसमें औचित्य कम है.

कठोरता, खौफ और कसाव जैसे प्रशासकीय गुणों की न्यूनता के कारण डॉ० सुमन के प्रशासन से लोगों को शिकायत है और खासकर ईमानदारी से पढ़ने-वाले छात्रों को. जितना श्रम डॉ० सुमन ने माधव कालेज को ऊपर से बनाने में

किया है, कदाचित् उसके भीतर की गतिविधियों के संचालन के लिए उससे कई गुना अधिक श्रम उन्हें करना पड़े.

चीन का भारत पर आक्रमण हुआ और डॉ० सुमन पागल ! यहाँ जाएँ, वहाँ जाएँ. इनसे मिलें, उनसे मिलें. भाषण दें. लड़कों से कहें—"पालिश करो, पैसे लाओ." लड़कियों से कहें "होटल चलाओ, पैसे लाओ." "एक लाख रुपया अकेला माधव कालेज देगा." उस दिन मुझे लगा कि डॉ० सुमन इतने ऊँचे हो गए; इतने विशाल हो गए कि कालेज के हाल मे उनके लिए समाई नहीं रही, जैसे दीवालें हिल जाएँगी; सुमन की कसमसाहट छज्जों की लकड़ियों को तोड़ देगी.

"मेरे बच्चों ! तुम राष्ट्र के काम में जुटे हो, परीक्षा होती रहेगी. मैं घोषणा करता हूँ कि छ:माही परीक्षा नहीं होगी. "तालियाँ....तालियाँ...बच्चे... बच्चे और मुझे लगा कि अरे, डॉ० सुमन तो बहुत छोटे बच्चे हो गए ! कालेज का मंच उनके लिए पलना और माइक उनके मुख की चूखनी.

मंच से उतरते हैं, वही तार...एक धुन..."सब लड़कों को एन० सी० सी० में भर्ती होना पड़ेगा, राष्ट्र का काम है प्राण देने का, खून देने का, कोई नहीं बचेगा, प्रोफेसर भी नहीं "लेफ्ट....राइट....बूढ़े हैं उन्हें छोड़ दो, और मुझे लगा—डॉ० सुमन जवाहर के उज्जैनी संस्करण हैं.

आफिस में आए. सदा की तरह लगे आए कुछ प्रोफेसर "लाख रुपया देना है, समझे" डाक्टर बोले.

"हाँ हाँ, सर, चार-पाँच महीनों में हो जाएंगे. कोई खास बात नहीं" और मुझे लगा कि इन्हें दो-चार मोटी गालियाँ दे दूँ, झूठी प्रतिध्वनि ?

डॉ० सुमन ऐसे लोगों से अक्सर घिरे रहते हैं जो उनके घाव को, उनकी आग को समझते नहीं और मुँहपोसी करते हैं. ये लोग उनकी भावुकता का गलत लाभ उठाते हैं और अपना उल्लू सीधा करते हैं. ये ही जन ऐसे लोगों को पहिचानने नहीं देते जो डॉ० सुमन के संकल्पों के वास्तविक वाहक हैं और डॉ० सभी को भोले मन से प्यार करते हैं. पात्र, अपात्र, उनकी दृष्टि में बराबर हैं इस दृष्टि से वे किसी को भी सच्चे हृदय से प्यार नहीं करते, "सिर्फ प्यार करने को" प्यार करते हैं, धुँए की बरसात का एक उदाहरण—

डॉ० सुमन का सजा सजाया ड्राइङ्ग रूम ! चाय की गन्ध घ्राण में लोगों के, और सुमन जी चालू—"फौलाद ढले...फौलाद ढले....मैंने कह दिया है, मेरे कालिज का बच्चा-बच्चा फ्रंट पर जाएगा; मैं सबके आगे रहूँगा."

"हाँ, हाँ दादा तुम जाओगे तो मुझे भी लेते चलना."

"हाँ-हाँ दादा मैं भी चलूँगा पीछे-पीछे."

और दादा गद्‌गद्‌ ! सन्तुष्ट !! मगर मै जानता हूँ कि ये सब लोग चाय पीकर घर जाएँगे, वार्डर पर कोई नही जाएगा. सिर्फ डॉ० सुमन का यह उबाल पैरों की गति बन सकता है. क्योकि उनके परबाबा प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम के शहीद, बाबा रीवां स्टेट आर्मी के जनरल, पिता भी वही. उबाल, कशिश, रक्षा का भाव, स्वाभिमान और आत्मोत्सर्ग सुमन की शिराओं मे बहते खून के अक्षर है. और सचमुच दूसरे दिन सुमन खादी की वर्दी मे थे.

× × ×

"हिश्‌ श्रोत्रिय, फिजूल की तारीफ करते हो, सब बाते ही बातें है. उन्होने जो वादे किए थे, पूरे हुए ? सिर्फ कविता कर दी 'फौलाद ढले या ....औ"

"जितना उन्होंने किया तुम कर सकते हो ? बुराई के हजार बहाने ! आखिर आदमी क्या जान दे-दे ?"

"हिश ! सिर्फ दिखावा."

"बेटे अरुण को इमर्जन्सी कमीशन मे फौज मे भर्ती कर दिया वह भी !"

"..........."

× × ×

नेहरूजी की मौत का जितना धक्का डॉ० सुमन को लगा और जिस ढंग से लगा, वैसा अगर सारे हिन्दुस्तान को लग सके तो उनकी मृत्यु सार्थक हो जाए ! इसके बाद सुमन अधिक कर्मशील, अधिक नियमित और अधिक खरे हो गए है. लोक-सापेक्ष्य व्यवहार उनकी जितनी बड़ी विशेषता है, उतनी ही उनकी कमजोरी भी है. अतः यदि उनकी यह सद्यः जात प्रवृत्ति अन्य प्रवृत्तियों की तरह जल्दी ही ठंडी न पड़ गई तो सुमन के जीवन में नया अध्याय जोड़ेगी. सुमनजी एक 'जोश' को अधिक नही निभा पाते है, यद्यपि आगामी जोश मे उसका कुछ न कुछ अंश समा लेते है. पर एक समय मे एक बात उन पर हावी रहती है. लेकिन जितनी समाई और जितना लचीलापन डॉ० सुमन मे है, अन्यत्र नही मिलता.

सुमनजी की वाणी मधुवर्षिणी है. आकर्षण की दृष्टि से अर्थात्‌ श्रोता की दृष्टि से; और 'कथ्य' याने स्वयं सुमनजी के अभिप्राय की दृष्टि से भी. हजारो

लोगों को एक साथ बाँध सकने की क्षमता उनमें है, प्रसंग का मार्मिक चयन, और अभिनय के आंगिक, वाचिक और सात्विकादि गुणों के कारण उनकी वक्तृता एक कभी न उबानेवाली मदिरा है. उनकी वाणी में अद्भुत संगीत है, कथन में ऐसी मौलिकता कि बस सुनते ही बनता है. योग्यों और अयोग्यों की प्रशंसा में डॉ० सुमन ने अपनी वाणी का दुरुपयोग भी कम नहीं किया है !

मैं यह मानता हूँ कि डॉ० सुमन अपनी असाधारण वक्तृत्व शक्ति, मोहक मधुर व्यक्तित्व, अपनी अध्ययनशीलता और पाण्डित्य के कारण 'इतिहास पुरुष' बन सकते हैं.

यदि वे किसी मिशन को लेकर सम्पूर्ण राष्ट्र में घूमें, कोई ज्योति लेकर घर-घर पहुँचें तो वे इतिहास-पुरुष हो सकते हैं. डॉ० धर्मवीर भारती ने वाम्बे में ठीक ही कहा था—

"सुमनजी छोड़िए प्रिंसिपली ! दक्षिण भारत और तमाम भारत में घूमिए, भाषण दीजिए, फिर देखिये चार दिन में हिन्दी राष्ट्रभाषा होती है."

वाणी का ऐसा वरदान कितनों को मिलता है ! पर मुझे लगता है कि डॉ० सुमन कभी तो ऐसा करेंगे. आचार्य शुक्ल, आचार्य केशवप्रसाद मिश्र, आचार्य नरेन्द्रदेव, निराला आदि का सम्पर्क व्यर्थ नहीं जाएगा. अपनी क्षमता का व्यापक स्तर पर डॉ० सुमन उपयोग कर सकते हैं. सुमन सीमा के व्यक्ति नहीं हैं, शायद वे किसी दिन अपने को पहचानें.

आज डॉ० सुमन का स्वरूप सम्पूर्ण साधना का समन्वित रूप है. कुछ लोग पुराना सुमन चाहते हैं, नया उन्हें रुचता नहीं. ऐसे लोग कृष्ण को बाल-गोपाल या राधिकारमण ही पसन्द करेंगे. उनके कर्मयोगी रूप को; उनके उस रूप को जहाँ वे विराट् स्वरूप होते हैं, युद्ध और रथ की वल्गा एक साथ पकड़े होते हैं—पसन्द नहीं करेंगे ।

डॉ० सुमन ने एक जमाने में कहा था—'मेरा वही वीर जवाहर दे दो.' शान्त जवाहर उन्हें भाया नहीं था, पर जवाहरलाल को उनकी यह कविता पसन्द नहीं आई थी, क्योंकि वे जीवन के विकास पर विश्वास करते थे. पहाड़ पर बहती नदी उद्दाम हो सकती है, अच्छी लगती है, पर वह छिछली होती है. मैदानी नदी शांत होती है; कम अच्छी लगती है पर वह भूपालक और गम्भीर होती है. इस अन्तर को समझनेवाला डॉ सुमन के वर्तमान स्वरूप को चाहेगा क्योंकि वह उनके जीवन की साधना, अध्ययन, चिन्तन और प्रभाव से समन्वित है.

फिर भी यह इति नहीं है, लक्ष्य को ढूँढने और बिखराव को गठित करने का काल इसे माना जाय. डॉ० सुमन भावुक हैं—यदि वे तार्किक होते, यदि वे आलोचक होते तो सम्भवतः उनका व्यक्तित्व अभी तक दिशावान् हो गया होता. पर तब वे सुमन रहते भी या नहीं, यह नहीं कहा जा सकता.

(१९६४ ईसाब्द)

× × ×

६ वर्ष का अन्तराल....१९६४ के बाद १९७० में 'सुमन'....

प्राचार्य अब प्रदेश के सबसे बड़े विश्वविद्यालय के कुलपति हैं. शिक्षा के क्षेत्र का मूर्धन्य पद सार्थक करने की व्याकुलता बुरी तरह मन में छटपटा रही है.

इधर 'काम के लोग' ताँता बाँधे रहते हैं. घण्टों एक बैठक में बैठना सीख गए है. या बैठे-बैठे बहना पड़ता है ! अब कम से कम व्ही० सी० का दफ्तर दरबार नहीं रहा. वहाँ एक-एक को जाना होता है. ज्यादा बातें नहीं होतीं.

भिनभिनानेवाले लोग अब काटने भी लगे हैं. न्याय का संकल्प करते हैं तो—दरी बिछाते रहनेवाले दुःखी हो जाते हैं. जिन्दगी भर के सम्बन्ध भुना लेना चाहते हैं. पीछे निन्दा-राग गाते है, और बहते 'प्रवाह' में हाथ भी धो लेते हैं.

बैठक में मुँह पर लोग जाने कैसा-कैसा बोल जाते हैं. यह 'यश' और मिलनसारिता का 'अभिशाप' है. पर दोस्तों में वैसे ही 'इन्फॉर्मल' हैं. वे ही ठहाके, वही मौज ! नरेश मेहता, महादेवी वर्मा, भगवतशरण उपाध्याय जब आ जाते हैं, तो हृदय जुड़ा जाता है. मेहता आते हैं तो रात के बारह बजे तक गप लड़ाते हैं, और नंगे पैर कार ड्राइव करते हुए उन्हें सुखदेवप्रसाद जी के घर मध्य रात्रि मे छोड़ने जाते हैं. महादेवी को दीक्षांत भाषण के लिए बुलाते है. जब लड़कों में कुछ हलचल देखते है, तो दीक्षांत समारोह की रूढ़ चौखट को तोड़ कर कहते हैं. "हिन्दी की सरस्वती महादेवी आई हैं. उनका सम्मान करें और पाँव के नीचे साँप भी आजाए तो भी न हिलें." समानधर्मा कवयित्री की सफल गूँज से इतने गद्गद् और आविष्ट हो जाते हैं कि रात को नींद नहीं आती और चार बजे उठकर भाषण का पारायण करते हैं. सुबह रेखांकित अंशों को—पाठ्यपुस्तक के व्याख्या-अंश की तरह—जो मिलता है, उसे पढ़ाते रहते हैं. सरस्वती जहाँ जाती हैं; सुमन पालकी उठाते है. कुलपति कवि की विकलता देखते ही बनती है !

बहुत प्रयत्न करता हूँ कि किसी कोने से पद का अभिमान झाँक जाए ! भाषण में कह देते हैं—"यह वाइसचांसलरी दो दिन की है, मैं तो आपका सेवक हूँ." 'बलि जाऊँ लला इन बोलन पे' तुलसी की ये पंक्तियाँ शायद इसी वक्त के लिये हैं.

भाषण में 'झुमाववाद' अब कम हो गया है. भाषा की मोहिनी पंख समेट रही है. जीवन का सत्य बाहर आने को विकल है. लोगों की आशा और मोह में भी अब कमी आ गई है. मान के स्थिर आधार हो रहे हैं. कुहासा और धुँआ छट रहा है,

अब हर कोई 'सुमन' से प्रशंसा और सम्मान नहीं पा सकता, सच और झूठ की विभाजक रेखा उनके मन में उभर चुकी है. आचार्य विश्वनाथप्रसाद जी की इस उक्ति का कि 'मधुमय सुमन हैं, इनकी मधुमती भूमिका है', शायद कुछ लोग अब समर्थन न करने की स्थिति में हैं. यह नये सुमन का अभ्युदय है.

इस बीच दो बार मारिशस और एक बार रूस घूम आये हैं. नई संजीवनी बटोरी है. रूस से जो चुना-सँवारा है—वह कवि की ही दृष्टि हो सकती है; किसी राजनीतिक या आम आदमी की निगाह नहीं.

केश धीरे-धीरे शुभ्र हो रहे हैं. पूर्णता पर पहुँचने के लिए शायद वाइस-चांसलरी के शेष तीन वर्षों की प्रतीक्षा में हैं. पर सुमन के जोश और हिल्लोल पर कोई असर नहीं हुआ है.

कवित्व जीवन में उतर रहा है और काव्य-माध्यम पिछली ऊँचाइयाँ छोड़कर नए रास्ते खोज रहा है, लेकिन फैशन के रूप में नहीं, अभिव्यक्ति की अनिवार्यता के रूप में. स्पष्टतः आराधना की मूर्द्धा पर पहुँचने की यात्रा का प्रस्थान हो चुका है.



अध्यापक : उपाध्याय या गुरु ?

मनु ने कहा है कि जो रोजी-रोटी के लिए पढ़ाता है—वह 'उपाध्याय' होता है—'योऽध्यापयति वृत्यर्थः मुपाध्यायः स उच्यते' परन्तु 'गुरु' वेतनभोगी अध्यापक नहीं होता. वह छात्रों को मंत्राभिषिक्त करता और वेदाध्ययन कराता है. याज्ञवल्क्य के अनुसार—'स गुरुर्यः क्रिया कृत्वा वेदनस्मै प्रयच्छते.' आज भी मुझे ये परंपरागत सांस्कृतिक संदर्भ स्मरण हो आते हैं. क्योंकि अध्यापकों की ये दोनों श्रेणियाँ (अध्यापन के लिए समर्पित गुरु और व्यवसायी उपाध्याय) आज भी बनी हुई हैं.

डॉ० सुमन ने सभी दिशाओं और संभावनाओं को अवमानित करके अध्यापन का कार्य स्वीकार किया था. इसमें किसी को भी संशय नहीं हो सकता कि सुमन जैसे अपने धर्म पर न्यौछावर शिक्षक बहुत कम मिलेंगे. यह कर्म उनमें बीमारी की हद तक पहुँच चुका है. उनके वक्ता और कवि दोनों पर उनका अध्यापक बराबर छाया रहता है; जिससे कई बार शिकायत करने का जी होता है.

वेतन लेना सुमन की अनिवार्य औपचारिकता है; पर अध्यापन उनकी विवशता है. इसलिए जैसा कि मैंने कहा है, वे प्रशासन के पद पर बैठकर भी प्रशासक नहीं हैं—उसी तरह वे वेतन लेकर भी वेतनभोगी अध्यापक नहीं हैं. खूब पढ़ना और झूम-झूम कर घंटों पढ़ाना उनकी रुचि (Hobby) रही है; यह उनके लिए आध्यात्मिक स्तर तक पहुँचा हुआ सुख है. कदाचित् यही कारण है कि छात्र उनसे तादात्म्य अनुभव करते हैं. इस प्रकार सुमन की 'विवशता' को अर्थवत्ता मिल गई है.

अध्यापक का एक और जीवन होता है, कक्षा के बाहर का जीवन ! वह भी कम महत्वपूर्ण नहीं होता. क्योंकि वह केवल अपनी बुद्धि ही नहीं अपने सम्पूर्ण अनुभव, आचार और व्यवहार छात्रों में संप्रेषित करता है. कक्षा की अपेक्षा कक्षा के बाहर छात्रों को अध्यापक की कई बार आवश्यकता होती है. क्योंकि उनके

सम्पूर्ण जीवन के लिए उस समय शिक्षक सबसे तीव्र प्रकाश-स्तंभ होता है. डॉ० सुमन के इस पक्ष को मैं कभी नहीं पहचान पाता यदि मैंने 'किसिम-किसिम' के अध्यापकनुमा लोग न देखे होते. दो-तीन उदाहरण पर्याप्त होंगे—

एक अध्यापक हैं. जो अपने को 'पारस' मानकर अपने स्पर्श मात्र से छात्र का 'सुवर्ण' हो जाना मानते हैं. दूसरे गुरु उनके लिए मिट्टी हैं. इसलिए वे अपनी सामर्थ्य का उपयोग शिष्य के पक्ष में नीचता की पराकाष्ठा तक करते हैं. उनके वार से कितने निरीहों की हत्या हो जाती है, इसकी चिन्ता उनके गुरुत्व की सीमा से बाहर है !

एक, दूसरे गुरु हैं 'लघु कज्जल सुमेरु अति सुंदर ?' उनका बोध उनके रूप-गुण से उन्नीस नहीं है. श्रद्धान्ध छात्र उनके अंतेवासी होते हैं. पर सभी छात्र—खास कर प्रबुद्ध छात्र—गंभीरता की खोल को विद्वत्ता का प्रतीक नहीं मान सकते और न 'त्वमेव माता च पिता त्वमेव' का पाठ ही कर सकते हैं. फिर, विद्यार्थी जीवन में प्रतिभाशील छात्रों में स्वार्थ बुद्धि इतनी नहीं होती कि गर्ज के लिए समय पर सब कर लें—फलतः उन्हे गुरुजी की दुलत्ती खानी पड़ती है (पर एक 'चतुर चितेरी कूर' लड़की ने स्वार्थ निकल जाने पर ऐसे गुरुजी को भी धता बता दी थी !)

ऐसे अनेक गुरुजनों को मैं जानता हूँ—जिनके पास कई चमत्कारक शैलियाँ हैं. इन सब के आधार पर मैं एक गुरु के नाते डॉ० सुमन का सही मूल्यांकन कर सकता हूँ—इससे ज्यादा इन प्रसंगों का मेरे निकट कोई महत्व नहीं है.

डॉ० सुमन अपनी प्रशंसा से सर्वाधिक लजाते देखे गये हैं. उनके दरबार में भले ही गलत और अपात्र लोग प्रवेश पा लें, पर ईमानदार छात्रों का उन्होंने कभी दलन नहीं किया. ग़लत लोगों को उनकी कमजोरी का लाभ मिलता है और सही लोगों को उनकी सजग अध्यापकीय चेतना का. सुमन किसी को न तो ऊँचा बोल सकते हैं, न किसी का अपमान करते हैं. जो लोग स्वभाव से संस्कृत, सीमा-बोध से आक्रांत और अपने काम में जुटे रहते हैं—उन्हें सुमन जी के घेरों को तोड़ कर उनके निकट पहुँचने में कठिनाई होती है. अतः विवश होकर उपलब्ध कच्चा माल ही उन्हें काम में लाना पड़ता है. पर डॉ० सुमन का अध्यापक ऐसे छात्रों की खोज मे ईमानदारी से जुटा अवश्य रहता है. ऐसे ही छात्रों पर वे हृदय से स्नेह रखते हैं. परन्तु उनकी ईमानदारी का पहला वार उनके प्रिय छात्रों को ही सहना है. जो कच्चे होते हैं—उखड़ जाते हैं और जो सुमन के भीतरी अध्यापक को समझते हैं, उन्हें ये पंक्तियाँ सदा याद रहती हैं—

'जब कलियों से तुझको
आंतरिक प्यार आता है,
तब उनके सिर मां के
चरणों उतार आता है.'

वस्तुत: 'ईमानदारी' की अपेक्षा ईमानदारी का आदर्श कला के अतिशय तक पहुँचा हुआ होता है. जब कोई व्यक्ति इसकी स्थापना करना चाहता है तो स्नेहियों को इसके खतरे समझ लेने चाहिए. डॉ० सुमन बारह विश्वविद्यालयों की चयन समिति के सदस्य हैं. पर उनका नाती (मँझले भाई की पुत्री का पुत्र) सैंधवा के एक प्राइवेट कालेज में व्याख्याता है—वर्षों से—कम से कम ऐसे व्यक्ति को सोच समझकर टोका जाना चाहिए. पर टोकनेवालों के सामने कोई लक्ष्मण-रेखा नहीं होती.

डॉ० सुमन किताबी शिक्षक नहीं हैं. वे जीवित प्रेरणा है. इस नाते वे छात्रों का नेतृत्व करते हैं.

मैं यह अनुभव करता हूँ कि आज नेतृत्व बहुत क्षुद्र और असंस्कृत लोगों के हाथ में है. जिससे नई पीढ़ी के साथ ही नये राष्ट्र को भी बहुत से खतरे हैं. इसलिए शिक्षकों को युवकों का नेतृत्व अपने हाथ में लेना है, ताकि वे नेतृत्व को भी एक स्तर दे सकें.

परन्तु यह घर की चहारदीवारी से कक्षा की चहारदीवारी तक के यात्रियों से नहीं हो सकता. उसके लिए छात्र-समाज के बीच रहकर उनमें एक विशिष्ट रुचि और संस्कार उत्पन्न करने होते हैं. सुमन की यह पंक्तियाँ—

'यह क्या दिन भर पोथी-पत्रा पढ़ते हो,

कैसे शिल्पी हो मूर्ति नहीं गढ़ते हो ?—समानधर्मी अध्यापकों के लिए भी प्रेरणा है.

परन्तु इन पंक्तियों के बावजूद सुमन ठीक से शिल्पी नहीं बन सके. उनके अपने आदर्शों की एक भी मूर्ति वे गढ़ नहीं सके. क्योंकि एक-एक मूर्ति को गढ़ने की एकाग्रता और साध उनमें नहीं आ पाई, वे स्वयं अपने विस्तारवाद और बिखराव के शिकार हो गए. सुमन के स्थानान्तर पर हजारों छात्र अभूतपूर्व जुलूस निकाल सकते हैं, रेल की पटरियों पर सो सकते हैं, हड़ताल करा सकते हैं; पर उनकी आस्थाओं और संकल्पों को अपने व्यक्तित्व में ढाल कर आदर्श प्रतिमान नहीं बन सकते, उनका सम्मोहक नेतृत्व सफल है; लेकिन उनका शिल्पी असफल.

क्योंकि उनके पास नेहरू का लोक-निर्देश है, गाँधी-सी एकान्त साधना और लोक-सम्पृक्ति नहीं हैं. इसीलिए गाँधी अपनी ही जोड़ की अनेक मूर्तियाँ गढ़ सके थे; और नेहरू एक भी नहीं. सुमन भी स्वभाव से नेहरू हैं. वे गाँधी की पूजा कर सकते हैं—पर गांधी के सेवाग्राम में कुटिया छाकर रह नहीं सकते. सुमन के अनुकर्ता सैकड़ों छात्र हैं—पर वे अपूर्ण हैं. फिर भी, अपनी बिखराहट के बावजूद सुमन प्यार और प्रेरणा के ऐसे स्रोत हैं, जिनसे आप्लावित हुए बिना कोई रह नहीं सकता.

वर्षों से उन्हें देखता और चकित होता रहा हूँ. क्योंकि इस स्थिति में अपने दस दिन रहने की कल्पना से त्रस्त हो जाता हूँ. सुमन कहते हैं 'अपनी सुबह से लेकर रात कुछ भी अपनी नहीं है'. बिलकुल ठीक है. रोज इतने खूब सारे लोगों से बिना झुँझलाए या अरुचि प्रकट किये उसी तल्लीनता, रुचि और आग्रह से मिलना—और वह भी अध्यापक होकर—मेरी कल्पना के बाहर की स्थिति है. यह स्थिति मूर्ति गढ़ने की तो कभी हो ही नहीं सकती. परन्तु सुमन वास्तव में प्रवाह हैं—पूरे व्यक्तित्व से इस प्रवाह में जो पड़ जाए और अपने आप गढ़ जाए तो गढ़ जाए! सुमन को गढ़ने की फुर्सत नही है. इस तरह सुमन का अध्यापक सीमा और शिल्प का अध्यापक नहीं है; समूह का अध्यापक है. जब से वे कुलपति हैं तब से तो वे यात्री प्राध्यापक (Touring Professor) बन गए हैं.

अपने विद्यार्थियों को सुमन आक्रामक के स्तर पर सहन करते हैं. सहिष्णुता कदाचित् किसी आचार्य का एक बहुत मूल्यवान् गुण होता है—क्योंकि उसके पास कोई सुनिर्मित व्यक्तित्व नहीं आते; अनगढ़, असंस्कृत और जिनके अभी ठीक से आदर्श और उद्देश्य नहीं बने हैं, जो जीवन की कला से अपरिचित हैं—ऐसे छात्र आते हैं. वे कई बार अपने माता-पिता की तरह ही गुरु पर भी आक्रमण कर देते हैं. मैं एक छात्र को जानता हूँ जिसने सुमन की तीखी आलोचना लिखी, एक बार सभा में उनकी असह्य सहिष्णुता पर असंस्कार की हद तक बरसा. पर डा० सुमन ने तब भी उसे हृदय से लगाया और बराबर अपनी वाणी और व्यवहार से उसे सहलाते रहे. क्योंकि उनके अध्यापक को इसका बोध था कि यह सब विद्वेष या दुर्भावना से नहीं किया गया. अतिरिक्त स्नेह के कारण या स्नेह के उस अधिकार के कारण किया गया—जो स्वयं ही गुरुवर सुमन ने उसे दिया था.

विद्यार्थी की ईमानदारी और परिश्रम को पूजा की सी शीतलता और सम्मान देना—गुरु के औदार्य और आशीर्वाद की चरम सीमा है. एक छात्र क्यों

के अनवरत कठिन परिश्रम के पश्चात् जब अपना ग्रन्थ उन्हें समग्रतः पहली बार दिखाने ले गया तो सुमन ने गद्गद् भाव से ग्रन्थ को हाथ में लेकर अपनी ऊँचाई के ठीक आधे झुक कर उसे सिर से लगा लिया. छात्र का हृदय जुड़ा गया, एक क्षण में वर्षों का परिश्रम सफल जान पड़ा और उसे लगा कि ये पंक्तियाँ सुमन ने अध्यापक के सम्पूर्ण रस के निचोड़ के रूप में लिखी हैं. कविता की औपचारिकता के लिए नहीं--

'हर साध तुम्हारे लिए सँजोई मैंने
तुम इसे लुटाओ या अन्तस में साधो
हर सांस समर्पित तुम्हें किए देता हूँ
तुम इसे बिखेरो या अंचल में बाँधो।' (विंध्य-हिमालय)

गुरु की गम्भीरता और महत्व की खोल सुमन जाने किन जन्मों के पार छोड़ आए हैं.

सुमन अध्यापक के रूप में तटस्थ व्यक्ति नहीं हैं. वे कई अर्थों में प्रतिबद्ध और सम्पृक्त व्यक्ति हैं. इसलिए वे दीवाल और दूरी नहीं निभा पाते. हर एक को निकट आने की सुविधा है—इसलिए उनके गुणों के साथ दोषों से भी अधिकृत अनधिकृत सभी लोग परिचित हैं, पर आरम्भ से ही जन-सम्पृक्त होते हुए भी वे बहुत जानदार, विद्वान् और उल्लेखनीय अध्यापकों में से रहे हैं. भीतर और बाहर की एक साथ साधना करना कितना कठिन है, यह कोई भी अध्ययनशील व्यक्ति समझ सकता है. अध्यापकों में जो लोग बहिर्मुखी होते हैं, वे अक्सर छिछले और असमर्थ अध्यापक होते हैं—वे छात्रों के गले में हाथ डालकर उन्हें कैंटीन में घुमा सकते हैं; साहित्य के अगम्य और अपार सागर में सन्तरण करवाना उनके वस का नहीं है. परन्तु सुमन सदा से अत्यधिक बहिर्मुखी होते हुए भी अत्यन्त गंभीर, सार्थक और ईमानदार अध्यापक रहे हैं. उनके अध्यापन का आकर्षण इतना अधिक होता था कि उनकी कक्षा के बाहर दूसरे विषय के छात्र इकट्ठे होकर चुपचाप सुनते रहते थे.

सुमन का पूरा अध्यापक व्यक्तित्व छात्रों को सम्मोहित करने के साथ ही प्रेरणा भी देता है. वे हिन्दी के कुछ गिने चुने अध्यापकों में से हैं, जिन्होंने अध्यापन को नए आयाम दिये हैं.



ऐन्द्रजालिक वक्ता

मैंने पच्चीसों बार डॉ० शिवमंगल सुमन को सुना है. चौराहे पर, मैदान में, आफिस में, घर में, मंच पर. अकेले मैं घंटों उनके साथ बैठा हूँ. सुबह, दोपहर, दिन ढलते, देर रात तक मैंने उन्हें अनेक भंगिमाओं में बोलते सुना है. मित्रों-संगातियों में, दुश्मनों-चापलूसों के बीच, अजीव-अजीव किस्म के बेमेल और बेडौल माहोल में उन्हें बैठे पाया है. उनकी एक स्थाई मुद्रा है—भाषण की मुद्रा. वे संवाद में कम और वक्तव्य में ज्यादा रुचि लेते हैं. कविता पढ़ते हुए भी जब उन्हें लगता है कि मैं लक्ष्य से हट रहा हूँ तो वे भाषण देने लगते हैं. इसीलिए उनके समग्र व्यक्तित्व को मैं उनके वक्ता से कभी भी पृथक् नहीं कर पाता हूँ. कभी भी उनकी कल्पना 'स्टिल लाइफ' के रूप में करते नहीं बनती. वे हाथ उठाए, या बाल भुलाते हुए सदा ही कुछ न कुछ कहते दीख पड़ते हैं. मुझे लगता है कि जैसे राहुल सांकृत्यायन को अपनी छोटी सी जिन्दगी में सब कुछ लिख जाना था, वैसे ही डॉ० सुमन को इसी जीवन में युग-युग की संचित वाक् को बहा देना है.

बहाव का वेग कई बार उद्गम का कहना नहीं मानता. कई बार अपने को ही उछाल देता है. डॉ० सुमन के साथ भी सदा यही हुआ है. वक्तृत्व के आवेश में उनके भीतर की अबाव उदारता उफन आती है. इसीलिए उन लोगों को हमेशा कहने का मौका मिल जाता है जिन्हें न बहना है, न बढ़ना—सिर्फ किनारे पर खड़े-खड़े ढोंके फेंकना है. उन्हें प्रभाव से ईर्ष्या है. ऐसे लोगों के लिए मुझे सुमन जी द्वारा उद्धृत एक शेर याद हो आता है, जो मौलाना आजाद ने नेहरू के आलोचकों के लिए कहा था—

जे नुक्शे तिश्नालबीदाँ बअक्ले खेश मेनाज़,
दिलत फ़रेब न गर जलवए सुराब न खुद ।

इसीलिए 'हमन को होशियारी क्या' वाली मुद्रा में सुमन की वाग्धारा—जो उनके व्यक्तित्व का प्रतीक भी है—इन फिजूल की नुक्ताचीनी में नहीं पड़ती.

नदी को तो सदा मुक्त बहना है. उसे दीवालें नहीं बाँधनी, परकोटे नहीं खड़े करने, उसे तो उत्साह के आगे-आगे दौड़ कर उसका मार्ग दिखाना है.



पच्चीस वर्ष पहले एक नवयुवक मंच पर खड़ा होता था—तो सौन्दर्य की एक लहर उठती और उसे छू कर इर्दगिर्द बिखर जाती थी. श्रोतावर्ग की आँखें जिनमें ज्यादातर स्त्रियों की आँखें होती थीं—कान को अपने साथ चस्पा कर लेती थीं. सुर्ख चेहरा, खास किस्म के बाल—जो खास किस्म से चेहरे पर झुके होते, जिन्हे कई लहरदार झोकों से वरजा जाता था. पर वे कम्बख्त—'मैं बरजत बरजत हठि धावै' की तर्ज में असंयत हाथों का कहा नहीं मानते. 'एहि बानक मों मन सदा बसौ बिहारी लाल' वाली रीतिकालीन उक्ति प्रगतिवादी ओजस्वी कवि पर बिलकुल 'फिट' थी. सुमन आरम्भ से ही यह राज जानते थे. हमेशा देर से आते. अपने आगमन से उत्पन्न लहरों को देखने की वासना उनके मन में रहती रही है.

(अब तो कवि सुमन पचास को पार कर गए हैं. उनके 'केस' अब 'गेसू' तो नहीं ही रहे. पर उनकी उमंग और जोश ज्यों का त्यों है.) कुछ लजाते हुए दाएँ हाथ से गले को खुजलाते, सीने के इर्द गिर्द टटोलते हुए वे खड़े होते हैं. अपनी सहज विनम्रता से सबको मोहते हुए वे भाषा का एक फूलदार वितान तानते हैं. शब्दों के जादू से वे सुपरिचित हैं. भाषा उनके कंठ में से ढलकर निकलती है. लिखित भाषा की जैसी सजावट और संस्कार किया जाता है—वैसा ही स्वर और बल से भी किया जा सकता है—सुमनजी की उच्चरित भाषा इसका प्रमाण है. उनका-सा मंद्रस्वर विरल है. इतना ही नहीं, वे वाणी द्वारा शब्दों को नवीन अर्थ भी देते है. इसे वक्तृत्व का सृजन-धर्म कहा जा सकता है. आरंभ में वे विषय को किसी ताजे, मार्मिक प्रसंग से जोड़ते है और इच्छानुसार अपने क्षेत्र में घुमा ले जाते हैं. (उनके पास उद्धरणों, उदाहरणों और कथाओं का एक मार्मिक भंडार है.) इसके पश्चात् वे अपने निर्देश का विस्तार करते हैं, और तुरंत एक ऐन्द्रजालिक की तरह श्रोताओं के मन और बुद्धि पर छा जाते हैं. उनके स्थाई विरोधियों को भी मैने वक्तृत्व से मुग्ध होते देखा है.



सुमन शब्द-जंजाल के आसक्त है, विस्तारवादी हैं, सार की बातें कम कह पाते हैं, अत्यधिक नाटकीय हैं, उनमें विद्वत्ता की कमी है, एक ही भाषण

और भंगिमा को ज्यों का त्यों कई बार दुहराते हैं.......यह निंदकों की कविता है–जिसका वे हर 'कवि सम्मेलन' में पाठ करते हैं. यदि यह आलोचना है, तो उसमें सार है. क्योंकि तब यह वक्ता और स्रष्टा के संघर्ष को बिना समझे कहा हुआ सतही रिमार्क नहीं है.

सुमन राजनीतिक वक्ता नहीं हैं. वे छायावादोत्तर कवि हैं और मुख्यतः प्रगतिवाद से सम्बद्ध हैं. प्रगतिवादी काव्य एक तरह से सम्बोधन है ; बहिर्मुखी काव्य है. जिस तरह ग्रीकों को अपने गणतंत्र की अग्नि प्रज्वलित करने के लिए सोफिस्टों की आवश्यकता थी, उसी तरह भारत को अंतर्मुखी छायावादी चेतना के विरुद्ध देश की आजादी के लिए लोकोन्मुखी संबोधन की आवश्यकता थी. सुमन उन कवियों में से हैं जिन्होंने उस आग को भाषणों के जरिए फैलाने की भी अतिरिक्त साधना का जिम्मा लिया था. (यह दुहरा उत्तरदायित्व था) इसीलिए उनकी कविता में भाषण और भाषण में कविता गुँथ गई है. जब युवा सुमन ने भाषण देना आरंभ किया था तब उनके सम्मुख छायावादी चेतना के श्रोता बैठे थे. जिनके इतिवृत्तात्मक युग के संस्कार भी शेष थे. भाषा का चमत्कार उस समय बहुत सराहा जाता था. अतः यह बहुत स्वाभाविक था कि श्रोताओं की रुचि को ध्यान में रखकर डॉ० सुमन अपनी भाषा-माधुरी को तकनीकी रूप देते. मैंने स्वयं अनेक श्रोताओं से डॉ० सुमन के लच्छेदार भाषण की अत्यन्त गद्‌गद् प्रशंसा सुनी है. सुमन के वक्ता के साथ लोगों की सराहना और रुचि जुड़ी हुई है; अतः उनकी भाषा—लोक-सापेक्ष है. लोगों की मुग्धता के अनुरूप उन्होंने भाषा की मोहिनी रची है. उनके वाक्-प्रपंच (!) का असली सूत्र जनता के पास है.

अब एक अर्सा बीत गया है—उन संस्कारों और रुचियों को. और अपने हिसाब से सुमनजी की भाषा में एक क्रांति हुई है. सानुप्रासिक पर्यायवाची शब्द-विस्तार में—उनके स्रष्टा की ही तरह उनके वक्ता की रुचि भी कम हो गई है.

जहाँ तक उनके भाषणों में पुनरावृत्ति का आरोप है—वह अपनी जगह है. सुमन के आस-पास सैंकड़ों किस्म के व्यावसायिक-अव्यावसायिक लोगों का एक बड़ा वर्ग अक्सर भिनभिनाता रहता है. बड़ी मुश्किल से पूजा के बहाने; या सुबह जल्दी उठकर वे स्वाध्याय कर पाते हैं.[1] उन्हें प्रायः प्रतिदिन कहीं न कहीं भाषण

---

१. अपनी यह पीड़ सुमन ने इन पंक्तियों में व्यक्त की है—
'अकेलापन अच्छा लगता है
पर लोग नहीं रहने देते

देना पड़ता है. कई बार एक-एक दिन में अनेक भाषण देते हैं. तब वक्ता से सदा नई सामग्री की आशा करना सरासर अनुचित अपेक्षा है. (अब यदि उनके मित्र और हितचिन्तक उन्हें रिझर्व रहने की सलाह दें, तो कदाचित् जीवन भर बनाई एक सुघड़ मूर्ति को भंग ही करेंगे : इससे न ज्यादा और न कम ! हर विशिष्ट व्यक्ति का निर्माण अपनी किस्म का होता है. कोई कवि से कहे कि वह वैज्ञानिक हो जाए या मूर्तिकार से कहे कि वह कहानी लिखने लगे ! अजीब परामर्श है न यह !) यद्यपि एक घटना, कथा और उद्धरण की मैंने कई बार डॉ० सुमन के भाषण में आवृत्ति सुनी है. पर सन्दर्भ और प्रस्तुतीकरण में ताजगी होती है. विज्ञान, साहित्य तथा क्रीड़ा समारोहों और विभिन्न विचारगोष्ठियों में एक-से प्रवाह से बोलते हैं. वस्तुतः वे बहुविद् हैं; और नई जानकारी के लिए उनके मन में एक असमाप्त जिज्ञासा है. अपने विषय में उनकी गहरी पैठ का पता जितना उनके विद्यार्थी दे सकते हैं उतना अहंमन्य आलोचक नहीं. इसे भाषण के साथ जोड़कर उसके औचित्य और सम्प्रेषण कला पर व्यर्थ प्रश्नचिह्न लगाने से क्या लाभ ?

अभिनय, वक्तृता का एक महत्वपूर्ण अंश है. उसे एक विशेष शैली में उन्होंने विकसित किया है. मैंने अनेक युवकों को सुमन के अभिनय-प्रभाव से आक्रांत होते देखा है. एक बार उज्जैन के एक छात्र से कहा गया कि वह आवश्यकता से अधिक अभिनय करता है. तो कहने लगा कि 'हम लोगों के अंग-अंग में सुमनजी बस गये हैं. सुबह से रात तक हम सर्वत्र उन्हें ही सुनते हैं. इसलिये उनसे उबर नहीं सकते.' इस घटना को मैं केवल आक्रान्त करनेवाले प्रभाव के रूप में इस्तेमाल करना नहीं चाहता. वस्तुतः नवयुवकगण उनके बाह्य अभिनय को तो ग्रहण कर लेते हैं परन्तु जहाँ से वह उद्भूत है उसको नहीं पकड़ पाते. **सुमन का अभिनय उनकी अनुभूति का एक सहज और अभिन्न अंग है. वस्त्र की तरह नहीं है; चमड़ी की तरह है.** इसीलिए वह सबसे अलग और खूबसूरत है. उसमें अति तो है. जैसी कला में होती है, पर वह उनके संदर्भ में प्यारी है.

उनका भाषण कई बार सारगर्भित नहीं होता. वे लम्बे भाषण में कम

घेर कर रिक्तता और बढ़ा देते हैं
लगता है कि भाग जाऊँ कहीं
किन्तु मुझे
नफरत है भागने से.'

—(विंध्यहिमालय-अंतराल)

बातें कह पाते हैं. प्रवुद्ध लोगों को कई बार वह अनावश्यक लगता है. अनेक उद्धरण, उदाहरण, पुनरावृत्तियाँ उनके भाषण को चौड़ा कर देती हैं. कई बार लगता है कि वे भीतरी अभावों को छिपाने और व्यर्थ ही श्रोताओं को चमत्कृत करने के लिये इन उपकरणों का सहारा ले रहे हैं.

परन्तु इसे भी उनके युगीन संदर्भ, भाषण के प्रयोजन और सम्मुख उपस्थित जनता की दृष्टि से आँका जाना चाहिए.



युग बदलता है, तब भी भावनाएँ तो शाश्वत रहती हैं—परन्तु अनुभव के स्रोत और शैलियाँ बदल जाती हैं. डॉ० सुमन को भाषण देते हुए कोई चौथाई शती हो गई है. इस बीच जीवन की शैली, मानदंडों और मूल्यों मे एक बड़ा परिवर्तन आ गया है. इसलिए आज के जागरूक श्रोता को उनमें कुछ पुरानापन प्रतीत हो तो कोई आश्चर्य नही है—बल्कि यह जीवन प्रवाह का धर्म है. व्यक्ति अपने योगदान से इस प्रवाह मे योग देकर स्वयं रीत जाता है. अपने युग के अत्यन्त सम्मोहक कवि पंत या मंच के अजेय कवि नीरज को ही उदाहरण के लिए लिया जा सकता है. तब भी डॉ० सुमन आज प्रभावित करते हैं—पर सदा से जाने हुए लोगो में उनके व्यक्तित्व के प्रति उतना आकर्षण नहीं रहा है. अब वे उनके कथ्य की नवीनता पर ही मुग्ध होते हैं, अतः सम्मोहन के आयाम कम हो गये हैं. फिर भी यदि वक्तृत्व केवल कला नही है और जीवन की कला भी है—तो वह सिर्फ मनबहलाव की दृष्टि से नहीं, सार्थकता की दृष्टि से आँका जायेगा. किसी भी कला का स्थायी मूल्य तो 'सत्य' ही है; मनोरंजक उसका क्षणिक धर्म है. तीव्र यथार्थवादी मेधा रंजन की अपेक्षा सत्य को अधिक सामर्थ्य से पकड़ती है. **सच तो यह है कि यदि जीवन के यथार्थ और वक्ता के यथार्थ से भाषण की कला सम्पृक्त नहीं है, तो वह नुमाइश में रखी खूबसूरत स्त्री की तरह है.**

सुमन की आकांक्षा उनके कर्म से सदैव अग्रगामी रही है. यह स्वप्नदर्शी व्यक्ति का प्राथमिक लक्षण है. परन्तु जब यह वाणी में बार-बार उजागर होता है और बार-बार व्यक्ति का सीमित सामर्थ्य और यथार्थ उसके पीछे-पीछे रहता है तो स्वप्न रिजैक्ट कर दिया जाता है. सन् बासठ के बाद सहसा भारतीय मनोवृत्ति और चेतना मे स्वप्न के प्रति तीव्र घृणा पनपी है, और सम्पूर्ण दिशाओं में फैल गई है. डॉ० सुमन ने अपने भाषण के प्रभाव में इसका मूल्यांकन अवश्य किया होगा. क्योंकि उनके नये काव्य 'विंध्य-हिमालय' में अन्तर्दर्शन का प्रबल आग्रह उसी की प्रतिक्रिया है.

सुमन पंत या रवीन्द्र की भाँति भीतर से बाहर की ओर विकसित होने-वाले व्यक्ति नहीं हैं. वे बहिर्मुखता से अंतर्मुखता की ओर आते हैं; क्योंकि उनका वक्ता, कवि और विचारक मुख्यत: 'लोक' बल्कि 'लोकप्रियता' से परिचालित है. डॉ० सुमन के भाषण में अत्यधिक प्रशंसा और कई स्थानों पर काल्पनिक परितोष के भाव बहुत उभर कर आते हैं. हिन्दी के एक व्यंग्यकार ने तो उनकी 'गंगा-जमनादास' वाली प्रवृत्ति पर एक व्यंग्य भी लिख दिया था. आश्चर्य है कि एक ओजस्वी, निर्देशकुशल वक्ता और प्रगतिवादी विचारधारा का समर्थ कवि नितांत औपचारिकतावादी कैसे हो जाता है ? इसका एक प्रबल कारण यह जान पड़ता है कि सुमन सर्वहारा की वकालत करने के बावजूद भी सामन्तवादी संस्कारों के व्यक्ति हैं. जिनमें एक ओर विलास, फिजूलखर्ची होती है और दूसरी ओर खतरा उठानेवाली तीव्रता का अभाव. आरंभ में लोकप्रियता जैसे अतिरिक्त सम्बोधन को ओढ़ने के कारण वे भाषण के खतरे झेलने को तैयार नहीं थे. (कोई भी अनुभव कर सकता है कि अब उनके भाषणों में 'सत्य' का तीखापन बढ़ता जा रहा है) अपनी सचाई के लिए एक बार भी सुमन को जनता ने हूट नहीं किया और उन्हें मंच से उठाकर बाहर नहीं किया—इसे उनके वक्तृत्व की असफलता माना जा सकता है. वे 'सत्यं ब्रूयात्' के साथ 'प्रियं ब्रूयात्' को साधे हुए हैं. पर वक्ता को 'विश्वसनीय' होने के लिए कई बार स्पष्टवादिता और कटुता की भी आवश्यकता होती है.

मुझे इस सन्दर्भ में प्लेटो द्वारा उद्धृत सुकरात और कल्लिक्लेस की चर्चा याद हो आती है. सुकरात ने कल्लिक्लेस से कहा कि 'भाषण दो प्रकार के होते हैं—एक अशोभन वाक्-प्रपंच और पर-परितोष के रूप में; दूसरे उदात्त रूप में—जिसमें नागरिक की आत्मा के विकास और संस्कार का लक्ष्य रहता है.' यह कहकर सुकरात ने उससे सवाल किया कि 'क्या तुम इस कसौटी पर खरा एक भी वक्ता जानते हो ?' कल्लिक्लेस ने कहा 'नहीं'. तब उसने पूछा कि 'क्या पिछली पीढ़ी में भी ऐसा कोई वक्ता था ?' कल्लिक्लेस ने कुछ महान् वक्ताओं के नाम बताए. तब सुकरात ने कहा कि 'ठीक है, यदि अपनी और दूसरे की इच्छा का परितोष ही सच्चा सुकृत है, तो वे अच्छे लोग थे !' सुकरात स्वयं भी ऐसे किसी महान् वक्ता का नाम नहीं जानता था. तात्पर्य यह कि जनता के **परितोष का उद्देश्य किसी भाषण को सराहना का विषय भले ही बना दे, उसे महान् भाषण नहीं बना सकता.**

वस्तुत: जनता के परितोष की डॉ० सुमन की वृत्ति का उद्गम उनके अध्यापकत्व में है. वे टूटे हुए छात्र को जोड़ने और उसके भीतर उत्साह उत्पन्न

करने में असाधारण हैं. उनके पास से कोई टूट कर नहीं जाता. यही चीज उनके भाषण में भी अपने को फैला गई. दूसरा कारण है—उनके व्यक्तित्व में निन्दा-भाव का प्रायः अभाव. उनसे वैयक्तिक स्तर पर भी किसी की बुराई दुर्लभ है. ठीक है कि—

'जो सहि दुख पर छिद्र दुरावा ।
वंदनीय सोइ जग जस पावा ।'

पर इसकी भी एक सीमा होती है. समाज के पूरे ढाँचे में छिद्रों को उघाड़ने का अपना स्थान है.

डॉ० सुमन ने वक्ता और कवि दोनों रूपों में युवा पीढ़ी पर गहरी छाप छोड़ी है. कविता पढ़ने का उनका एक खास अन्दाज है. एक समय तो तरुण अक्सर उस शैली पर इतने लट्टू थे कि बहुतों के हाव-भाव-वाणी में सुमन उतर आए थे. इस माने में वे मंच की एक विशिष्ट शैली के निर्माता हैं. वे अकेले एक बृहत् समारोह हैं, अपनी उपस्थिति से गहरे अभावों को भरने की क्षमता उनमें है. 'विंध्य-हिमालय' में उनका यह कहना अत्यन्त सटीक है कि—'मेरी वाणी में रसा रसवती होती'.



सतत प्रवाही सुमन कवि रूप में अब साधना के शीर्ष पर आरोहण करने के लिए भीतर की ओर अभिमुख हो गए हैं; फिर भी उनका वक्ता देहली पर असमंजस की मुद्रा में खड़ा है. वह प्रकारान्तर से उनके कवित्व की तुष्टि और निहित मानवीय आस्था को मुखर करता है. पहले डॉ० सुमन के भाषण-गृह से निकला श्रोता झूमता, वाह-वाह करता हुआ जाता था, अब उसके मुख पर एक ओज मिश्रित आस्था-राग झलकता है. सन्तोष और विकलता की एक अजीब धूप-छाँही तैरती रहती है.

अब डॉ० सुमन का वक्ता अग्निपरीक्षा के दौर से गुजर रहा है. इसलिए उनका भाषण-मंच न 'पलना' है, न 'सिंहासन;' वह 'वेदी' है. क्योंकि लोगों को उनकी वाणी में 'कर्म' न उतार सकने के प्रति कोई विकल्प नहीं रहा है. वे समझते हैं कि अब हमने सुमन को वाणी की अर्थवत्ता के सारे साधन दे दिए हैं. उन्हें क्या पता कि एक कुर्सी जाने कितनी अदृश्य कुर्सियों के सहारे टिकी या डगमगाती रहती है ?

यह आतंक बना हुआ है कि सुमन के द्वारा बनाए गए जाने कितने कालिदास, रवीन्द्र, दोस्तायावस्की विश्वविद्यालय में अपना अनुसन्धानपीठ (चेअर) स्थापित करने के लिए आग्रही हो जाएँगे ! दावेदार तो वे खैर हो ही गए हैं ! आदमी के भीतर सुप्त देवत्व को बाहर लाकर उसका 'एन्लार्जमेन्ट' करने का सद्भाव और महामानवता के अनेक खतरे हैं.

सुमनजी के भाषण में मैं अब दृढ़ता और शक्ति का अनुभव करता हूँ. (नम्रता ज्यों की त्यों है, पद की गरिमा उसे जरा भी ऊपर को नहीं खींच सकी है !) सत्य और आशावाद अब उनके भाषणों में फैला हुआ कुहासा मात्र नहीं रहा है. 'मेरे रहते विक्रम विश्वविद्यालय में कोई राजपूत परिहार किसी पद पर नहीं आ सकेगा.' 'मैं अन्याय और पक्षपात के आधार पर कोई निर्णय नहीं लूँगा'.—ये वाक्य उनकी नई प्रतिबद्धता को सिद्ध करते हैं. परोक्षरूप में भाषण के खतरों में से ये खतरे भी हैं; जिन्हें समझ कर ही शायद उन्होंने उठाया होगा. वाणी का यह घनत्व और निर्णय की दृढ़ता नये सुमन का जन्म दिन है.



प्रशासक : एक और चेहरा

यदि डॉ० सुमन की प्रशासक बनने की महत्वाकांक्षा होती, तो वे नेपाल से सीधे उज्जैन क्यों आते ? एम० ए० पास करने के पश्चात् ग्वालियर में अध्यापक क्यों होते ? किसी सरकारी या दरबारी महकमे से सम्बद्ध क्यों नहीं हो जाते ? आज वे 'भूल-गलती' से ही ऐसे तख्त पर बैठ गये हैं जिसे स्वतन्त्र भारत की शिक्षाव्यवस्था ने अध्यापक के मूल धर्म से भटकाकर प्रशासन के पंकिल मार्ग में ला छोड़ा है ! यदि ऐसा नहीं होता तो किसी अफसर और रिटायर्ड जस्टिस को इस पद पर बिठाने की बात सोची भी नहीं जा सकती थी. क्योंकि यहाँ न फाइलें चलाना है और न इसे Court of law बनाकर लकीरी फैसले देने हैं. इसे राजनीतिक वात्याचक्र में दिग्भ्रमित करके सच्ची मेधा और निर्भ्रान्ति ज्ञान के अयोग्य भी नहीं बनाना है. पर यह सब हो रहा है और शिक्षा घिसट रही है. इसीलिए आचार्य द्विवेदी की कुलपति पद के लिए स्थायी निषेध मुद्रा बनी हुई है. यहाँ तक कि उन्हें रेक्टरी से भी इस्तीफा देने को विवश होना पड़ता है और 'दिनकर' भागलपुर के पहले दो शब्द उठाकर दिल्ली लौट आते हैं.

फिर भी डॉ० सुमन कुलपति बने हैं, इसके पहले वे प्राचार्य थे. दोनों मुख्य रूप से प्रशासन के पद हैं. पर इतने से ही सुमन प्रशासक नहीं बन गए ! उन्होंने इन पदों को अपने स्वभाव के अनुरूप बना लिया है—यह कहना अधिक उपयुक्त है.

प्रशासक होने में कोई अध्यापक या कवि गौरव का अनुभव नहीं कर सकता. जीवन के प्रसंग में किसी पद पर बैठकर उसे निभाना भिन्न बात है और अपने को बदलकर कुर्सी के अनुरूप ढालना दूसरी बात. जो सुमन को प्रशासक कहकर उनका सम्मान करना (या उन पर व्यंग्य करना) चाहते हैं उनसे कुछ प्रशासनिक प्रश्न किये जा सकते हैं—

क्या सुमन कभी क्रूर या कठोर बने रह सकते हैं ? वे अपने सहकर्मियों और छात्रों से दूरी (Distance) निभा सकते हैं ? गलत निर्णय पर अटल रह

सकते हैं ? क्या वे अपने-परायों को पहचान सकते हैं ? पहचानकर यथावत् व्यवहार कर सकते हैं ? क्या वे नौकरशाही के धुरी-धर हो सकते हैं ? क्या वे निर्णय की योग्यता को पैंतरेबाजी के रंग में रंग सकते हैं ? क्या अपनी जन्मजात नम्रता और अतिरिक्त उदारता को त्याग सकते हैं ?

यदि वे यह सब नहीं कर सकते तो वे प्रशासक पदेन भले हों; व्यवहार में नहीं हो सकते. इतने पर भी उन्हें कोई चतुर प्रशासक कहता है तो कोई कुशल प्रशासक. एक साहब ने तो एक लेख लिख मारा—प्रशासक महा कवि'...!

मैंने माधव कालेज में उनका प्रशासन काल देखा है. उन्होंने इस संस्था का रूप बदल दिया था. इमारतें बनवाई थीं, बगीचे बनवाये थे, साजसज्जा की थी, देश के विद्वानों को बुलाया था, उच्च कोटि के सांस्कृतिक आयोजन कॉलेज में हुए थे. याने कि सिवा अच्छी पढ़ाई के कॉलेज में सभी कुछ अच्छा हुआ. प्राचार्य कक्ष दरबार बन गया था. कॉलेज के नवरत्न वहीं से प्रकाश फेंका करते थे. सुमनजी किसी से कुछ कह नहीं सकते थे—अपने अत्यन्त सौजन्य के कारण—और लोग अपना काम नहीं करते थे उनके आकर्षण के कारण ! सौजन्य और प्रशासन साथ-साथ कैसे चल सकते हैं ? या तो सौजन्य दिखा दीजिए या प्रशासन कर लीजिए. दोनों एक साथ नहीं चल सकते. 'हँसब ठठाइ फुलाइब गालू ?' एक बार कॉलेज में लाठीचार्ज का इतिहास भी बना और डॉ० सुमन ने राम की रक्षा-मुद्रा में हृदय पर एक ईंट का प्रहार सहा ! भाई साहब प्रशासक होते, तो घर बैठकर रिपोर्ट लिखते ! इधर विश्वविद्यालय में लड़कों ने आक्रमण कर दिया और डॉ० सुमन भाषण में कहते हैं—'जवानी है, जोश आ गया, माफ किया, बच्चे हैं.' सो भाई साहब, सुमन किस तरफ से प्रशासक हैं.

सच तो यह है कि सुमन शासन करने को कुलपति नहीं बने. वस्तुतः उनके मन में एक सपना है. जिसे वे चरितार्थ करने के लिए एक अवसर चाहते हैं. वे अपने जीवन में अनेक बार छात्रों के लिए जूझे हैं. अनेक प्रश्न उनके मन में धुँधुवा रहे हैं. छात्रों के हित के; शिक्षकों के कल्याण के. उनके भीतर दस सहस्र छात्रों का संरक्षक, भारतीय परंपरा का कुलपति कहीं बहुत गहरे बैठा है. वह प्रशासक तो नहीं ही है. पिता है, भाई है, संरक्षक है, नेता है.

जिन गुणों से वे अपने पदों पर सफल हैं—वे प्रशासक के गुण नहीं हैं. बल्कि ऐसी विशेषताएँ हैं जो इसके सर्वथा विपरीत हैं. अर्थात् अभिभूत कर देनेवाली उदारता, अत्यधिक विनम्रता, परम सौजन्य, सद्व्यवहार, मधुर और प्रेरणामयी वाणी. इससे वे अपने सहकर्मियों पर छा जाते हैं, शत्रुओं को 'बिना मोल का

घेरा' बना लेते हैं. इस तरह वे प्रशासक की खोल में नेतृत्व करते हैं. हर दिशा में अपने अनुयायी और भक्त उत्पन्न करना; सदा समाज के बीच विचरण करना; चाही अनचाही जगह पर प्रेम और मुस्कुराहट बाँटना—नेता के गुण हैं.

परन्तु कुछ छटे हुए 'चाणक्य' सदा से ही 'कुमार गिरि' के सम्मोहन के बाहर रहे हैं, उनके नेतृत्व को प्रशासन के स्तर पर उन्हीं की चुनौतियों का सामना करना होता है. वे प्रशासन की कठोर दीवारों को भी भेद सकते हैं; तो नेतृत्व के सुकुमार घेरे को तार-तार करना उनके लिए कौन बड़ी बात है ? जहाँ सुमन सफल हैं—वहाँ उनका नेता सफल है—जिसे भ्रम से लोग प्रशासक कहते हैं—और जहाँ वे असफल हैं—वहाँ भी असफल वही है. प्रशासक से उनका लेना-देना नहीं.

(हमारे युग में 'नेता' शब्द का अर्थापकर्ष हो गया है. बहुत मामूली स्ट्रक्चर के लोग लीडरी करते फिरते हैं. पर यहाँ मेरा आशय उस वास्तविक नेतृत्व से है जो मन, बुद्धि तथा कर्म से अपनी अनुगतता के लिए अवश करता है; मनुष्यता के ऊँचे मूल्यों की साधना के कारण आकृष्ट करता है.)

यदि कवि सुमन जैसे व्यक्ति भी प्रशासक हो जाएँ तो कुलपतिपद से क्या आशा की जा सकती है ? क्योंकि यहाँ भी यदि शासक-शासित, या न्यायाधीश और अपराधी की-सी भूमिकाएँ निभाई गयीं तो विद्यानिवासजी के अनुसार यह शिक्षा-संस्थान नहीं सेक्रेटरिएट और न्यायालय बन जायेगा. यह पद भी वस्तुतः आचार्य का पद है अफसर का नहीं.



मानवीय पहलू : संघर्ष से संवेदना तक....

[सुमन के व्यक्तित्व मे न तो उनकी नफीस उँगलियाँ आकर्षक हैं, न मसृण चर्म. उनके झूलते हुए बावरे केश और विशाल देह भी उनका व्यक्तित्व नही हैं. सुमन का सारा व्यक्तित्व उनकी आँखों में हैं. संभ्रमित आधी डूबी और आधी रहनुमाई से तर आँखो मे; जो कपोलों के ऊपर उठाव के निचले घेरों से करुणा के वृत्त बनाती हैं. यदि सुमन बहिर्मुखी हैं तो दर्पण ने उनसे अवश्य कहा होगा कि तुम वह हो जो तुम्हारी आँखें हैं.

—लेखक]

कविजीवन के प्रारंभ मे सुमन को कष्टों के अनेक दर्दीले दौरों से गुजरना पड़ा है. इन संकटापन्न चरणो के संकेत उनके काव्य मे जहाँ तहाँ मिल जाते हैं. अपनी पीड़ा को मौन पी लेने, और दूसरो के दर्द को ही अभिव्यक्ति देने की आकांक्षा[1] के बावजूद कवि की पीड़ा अव्यक्त नही रह सकी है. 'हिल्लोल' का भावुक सुमन यह नही छुपा सका है कि—

'मेरे उर में जो निहित व्यथा,
कविता तो उसकी एक कथा.'

'प्रलयसृजन'-काल मे यह दर्द और भी तीखा हो गया है. 'अन्तर्द्वन्द्व' कविता मे कवि की विफलता और परेशानी निरावृत हो गई है—

'घेरे है चारों ओर मुझे
मेरी सीमा की आकुलता
तन-मन बन्धन में जकड़े-से
पग-पग पर बिखरी असफलता.

१. अपनी पी लो मौन, पराई जी भर व्यथा कहो—सुमन.

तरुण कवि जिस ओर वढ़ता है उसी ओर 'दुर्दिन' घूम जाता है—

'जिस ओर कदम मैं रखता हूँ,
दुर्दिन को बसती बस्ती है.
(पर आखें नहीं भरीं)

ऐसी विषम परिस्थिति में मनुष्य निराश, कुंठित या अहम्ग्रस्त और कटु हो जाता है. लेकिन सुमन में कभी भी कष्ट का कसैलापन या पीड़ा की कड़ुआहट नहीं उतर पायी है. इसे सुमन के शब्दों में 'जलन की साधना' कहा जाना चाहिए—जो उनके जीवन की एक बहुमूल्य आकांक्षा है—(जलन की साधना संसार में सस्ती नहीं होती.)

सुमन ने सदैव कुंठा का सामना अपनी गति बढ़ाकर किया है; आक्रोश को उन्होंने कविता में उतार दिया है; असफलता के दुःख को उन्होंने संवेदना और करुणा में परिवर्तित कर दिया है और प्रेम की आग को उन्होंने चेतना के प्रकाश के रूप में इस्तेमाल कर लिया है. इस तरह सुमन अपनी काया को काँटों से छिदवाकर भी न केवल अपने सौन्दर्य, गन्ध तथा ताजगी को ही सुरक्षित रख सके, बल्कि उसे विवर्द्धित भी कर सके हैं. यही कारण है कि जगह-बेजगह उनके तीखे नाखून और व्यक्तित्व को ध्वस्त कर देनेवाली घृणा और प्रतिहिंसा व्यक्त नहीं हो पाती है. संत्रस्त और असह्य पारिवेशिक नीचता की कटुता से असंयत 'निराला' से सुमन ने कहा था कि—'ठीक है तुम कदाचित् यह सोचते होगे कि आजीवन जलना व्यर्थ हो गया, आज अन्धकार ज्यों का त्यों है और रावण खल खल अट्ट-हास कर रहा है, परन्तु फिर भी तुम्हें आगे बढ़ना होगा क्योंकि—

'आ रहे अन्यथा जो पीछे
देखते तुम्हारी चरण-रेख
क्या सोचेंगे ? क्या मार्ग भ्रष्ट
या विधि-विडम्बना का कुलेख ?

'यदि तुमने अपनी चरणरेख न छोड़ी, यदि तुम आगे न बढ़े तो कदाचित् 'नव-उत्साही' नाविक भी सिंधुतरण में हिचकेंगे', निराला के लिए कही गई ये पंक्तियाँ 'सुमन' के अपने दर्शन को भी व्यक्त करती हैं. यह ठीक है कि 'निराला' और सुमन का संघर्षों से निपटने का अपना अपना तरीका है, जहाँ सुमन झुककर संकट को ऊपर से निकल जाने देते हैं, वहाँ निराला अडिग खड़े होकर उसके वार को सहते रहे हैं. समझौते की सहूलियत उनके पास नहीं थी. सुमन की शैली व्यावहारिक, मनोवैज्ञानिक और शिक्षकवाली शैली है. निराला की शैली ठेठ

आत्मगौरव और अहंमन्य कवित्ववाली खड़ी शैली थी. फिर भी यदि सुमन पर हुए प्रहारों या गुजरे हुए संकटों अथवा अनावश्यक उपेक्षाओं या फतवों का ब्यौरा तैयार किया जाए तो वह पागलपन की खासी सामग्री बन सकती है. और तो और दोस्तों ने विश्वासघात करके निजी पत्रों का सार्वजनिक उपयोग करते हुए लेख तक लिख डाले. इस पर आक्रोश प्रकट करने के बजाय सुमन ने कहा कि 'यह दोस्तों का मज़ाक है,' इस तरह अपनी शैली से सुमन ने 'जीवन के व्यंग्य' को 'व्यंग्य के वरदान' में रूपायित कर दिया. उनके काव्य में पचीसों बार नीलकंठी शिव का उल्लेख मिलता है. यह बाहरी जहर और कवि की मनोवृत्ति दोनों की एक साथ अवचेतन अभिव्यक्ति है. यद्यपि सुमन की यह बर्दाश्त कई बार कोफ्त की हद तक पहुँचकर, समझदारी की राजनीति में बदल जाती है; और कवि, गौरव की मूर्धा से फिसलकर आत्महीनता के खड्ड में गिरा-सा जान पड़ता है. पर सुमन के व्यक्तित्व में—व्यक्तित्व के रोम रोम में—समाई चिरंतन विनम्रता और उदारता इस आशंका को बहुत हद तक दूर कर देती है. राजमाता के आगे झुका सर जब रामचरन चपरासी के प्रति भी विनम्र व्यवहार करता है तो सामन्तवादी चापलूसी कहकर उस विनम्रता को उड़ाया नहीं जा सकता. क्योंकि वह तो दो-मुही होती है. जहाँ एक ओर वह समर्थ के आगे दुम हिलाती है, वहीं और दूसरी ओर दुर्बल के सम्मुख गुर्राती है. उसमे और इसमें इतना मोटा अन्तर है कि समझाने की आवश्यकता नहीं. सुमन के व्यक्तित्व की सार्थकता निरंतर संघर्ष करते हुए, बल्कि जबरन् संघर्षों को टेरते हुए (तूफानों की ओर घुमा दे नाविक निज पतवार) भी अपनी मधुरता, सुगन्ध कमनीयता बनाए रखने में है.

सुमन ने, व्यक्ति पीड़ा को व्यापक संवेदना में बदलने का, अपने व्यक्तित्व और कृतित्व में एक-सा प्रयत्न किया है. और किसी को सुमन का स्नेह मिले न मिले, दु:खी व्यक्ति उनसे निराश नहीं हो सकता. वे अपने विद्यार्थियों से कहा करते हैं कि 'भले ही किसी की प्रसन्नता में सम्मिलित होओ या न होओ पर हर-एक के दु:ख में हिस्सा बटाने का प्रयास करो'. वे अक्सर एक कहानी सुनाते हैं कि 'मनुष्य की पहचान उसकी संवेदना और सहानुभूति से होती है. दो आदमी एक मकान को बनते हुए देख रहे हैं. अकस्मात् दीवाल गिर पड़ती है और मचान पर बैठा आदमी उसमें दब जाता है. एक के मुँह से निकलता है 'अरे दीवाल गिर गई.' और दूसरे के मुँह से निकलता है—'हाय आदमी दब गया.' एक-सी घटना पर ये दो प्रतिक्रियाएँ आदमी-आदमी के अन्तर को बताती हैं, सर्वहारा के प्रति सुमन की सहानुभूति, विद्यार्थियों के प्रति उनका वात्सल्य, छोटे से छोटे कर्मचारी की चिन्ता-सुमन के दर्शन ही नहीं, व्यक्तित्व का भी अंग है. सुमनजी के निजी

सचिव श्रीभताने बताते हैं कि यदि हम लोग बाहर जाते हैं तो सुमनजी अपने खाने से पहले, पूछते हैं कि भताने ने खाया या नहीं, या कि ड्रायवर को पहले खिलाओ, आदि. यह बहुत छोटी सी बात है. मगर छोटी छोटी बातें आदमी के टुच्चेपन को या उसकी श्रेष्ठता को प्रकट करती हैं. कवि सुमन की यह आकांक्षा काव्य के क्षण की उपलब्धि नहीं जीवन में चरितार्थ होनेवाली आकांक्षा है—

'मेरे अस्तित्व के पत्र-पत्र
बिखर जाँय
यत्र-तत्र
पत्र-पत्र
जीवन को जिलाने में
खुद को पिलाने में।'
(विंध्य-हिमालय)

दुनिया के दुःख दर्द के लिए अपने को 'पिला देने' की इच्छा ने, सुमन के व्यक्तित्व में चिन्ता का रूप ले लिया है. वैयक्तिक प्रश्नों को नेपथ्य में छोड़कर वे मनुष्य की समस्या के लिए बेचैन दीख पड़ते हैं—

'आज घृत से अधिक ईंधन की जरूरत
प्रश्न यह लेने न देता चैन।'

यह अपने घर की नोन, तैल लकड़ी की चिन्ता नहीं है, सामान्य मनुष्य की बुनियादी आवश्यकता की चिन्ता है. याद आती है रवीन्द्रनाथ के जीवन की एक घटना—एक बार वे ईरान गए थे, उन्हें शेख सादी की कब्र पर ले जाया गया. वहाँ हाफिज का दीवान रखा था. जिसकी यह विशेषता बताई जाती है कि यदि मनुष्य कोई प्रश्न सोचे और उस दीवान का कोई पृष्ठ खोले तो पहली पंक्ति में उसे अपने प्रश्न का उत्तर मिल जाता है. टैगोर से भी एक प्रश्न सोचने को कहा गया. उन्होंने प्रश्न सोचा 'क्या भारत में कभी साम्प्रदायिक दंगों का अन्त होगा ?' कई सवाल उठते हैं—क्या टैगोर के मन में अपने या अपने परिवार से सम्बन्धित कोई जिज्ञासा शेष नहीं रही थी, उन्हें तुरन्त भारत और यहाँ के अमानुषिक दंगे याद आए. यह संवेदना के विस्तार का प्रमाण है. सुमन यदि कुंठित, निराश या आहत होकर एकांतिक या स्वार्थी हो जाते या अपने मूल धर्म से भटक जाते, तो क्या आवश्यकता थी उनकी चर्चा करने की ? यह संवेदना की

व्यापकता और उनके व्यक्तित्व का एक विशिष्ट रूपायन ही है जो सुमन को हर एक के मन पर अंकित करता है.

* * *

सुमन के व्यक्तित्व में न उनकी नफीस उँगलियाँ आकर्षक हैं, न मसृण चर्म. उनके झूलते हुए बावरे केश और उनकी विशाल देह भी उनका व्यक्तित्व नहीं है. सुमन का सारा व्यक्तित्व उनकी आँखों में है. संभ्रमित, आधी डूबी और आधी रहनुमाई से तर आँखों में; जो कपोलों के ऊपर उठाव के निचले घेरों से करुणा के वृत्त बनाती हैं. यदि सुमन बहिर्मुखी हैं तो दर्पण ने उनसे अवश्य कहा होगा कि तुम वह हो जो तुम्हारी आँखें हैं !



स्र ष्टा

- स्रष्टा : गवाक्ष के संदर्भ
- कृति विवेचना
  - * हिल्लोल
  - * जीवन के गान
  - * प्रलय-सृजन
  - * विश्वास बढ़ता ही गया
  - * पर आँखें नहीं भरीं
  - * विंध्य हिमालय
  - * ....
- एक महान कविता : 'जल रहे हैं दीप जलती है जवानी'.
- शिल्पी सुमन
- कवि सुमन : समग्रतः मूल्यांकन.

स्रष्टा : गवाक्ष के संदर्भ

....उनके पिता का जन्म हुआ—श्रावण शुक्ला-४, संवत् १९७२ विक्रमाब्द को....और अपने मानस पुत्र सुमन के निर्माण में उन्हें २३ वर्ष लग गए. क्वाँरी कोमलता और सहज वात्सल्य ने कवि सुमन को अपनी ही दुनिया में 'हिल्लोल' लेने छोड़ दिया. और सुमन है कि कभी इधर और कभी उधर विविध समीर के झकझोले खाता हुआ, गन्ध बिखेरता, अल्हड़ मस्ती में सूरज से कम और चाँद से ज्यादा आँखें मिलाने लगा. व्यक्ति-परिसीमन की यह रंगीनी आखिर कब तक चलती? यौवन की धूप और मिट्टी की बास जब नये सृजन का निमंत्रण देती है—तो एक अजीब-सी कशिश क्वाँरे मन के किसी कोने में उठती है; और छा जाती है, इन्द्रधनुष की छायालू बदली के वरदान-सी. 'जीवन के गान' बिखरने लगते हैं. सुमन अकेला पैदा नहीं होता, वह अनंत बीजराशि का स्रष्टा है. वीणा की आवाज घनगर्जन के घोष में खो जाती है और चारों ओर अपने से बाहर फैली गंध और हरीतिमा स्वप्न को उसकी आँखों से उठाकर समष्टि के सत्य पर बिखेर देती है. जैसे पूर्व दिशा अन्धकार की कोख से सूरज को निकालकर जगत् के आँगन पर अर्घ्य की तरह समर्पित कर देती है. अपनी प्रेयसी से सुमन का वादा था—

'बहते-बहते पी जाती है जैसे सरिता सागर-संगम,
गाते-गाते तुम ही में लय, हो जायेगा गीतों का क्रम.'

लेकिन बाद में उसे अनुभव हुआ कि यह तो अपरिपक्व मन की बेहोश इल्तिजा है. एक ओर दुनिया है दायित्व की; कर्म की; बहुत बड़ी; बहुत पूर्ण. तो वह प्रेयसी से मुकर गया—

'मैं कर्तव्य-विवश था वरना तुम में निज को लय कर देता.'

खुमारी के बाहर की जो दुनिया है. गहरे काले रंगों से पुती; चरम दुःख, चरम बंधन और कराह की दुनिया! वह पुकार रही है—यौवन को! और यौवन का धर्म है उफान—वह संयम नहीं जानता. जब वह जगत् से विद्रोह करता है,

तो प्यार की आग लगा लेता है, और जब प्यार से विद्रोह करता है तो जगत् में विप्लव मचा देता है. उसका लक्ष्य दोपहरी की निरभ्र धूप सा स्पष्ट है—'विप्लव गायन गाना होगा'. (जीवन के गान) प्रेयसी से उसका आग्रह है—

'मेरा पथ मत रोको रानी.'

(जीवन के गान).

लेकिन विप्लव का रास्ता, कोई लहरियों का मखमली रास्ता नही है—वह है आरी की धार का रास्ता; लहरो के विरुद्ध ! परन्तु सुमन उस पर चल लेगा क्योंकि उसके अनुसार 'काँटो से छिदवा कर काया, मै आज सुमन-धन कहलाया'.

पीड़ा मे गहराई भी होती है और विस्तार भी. अतः विप्लव की उद्दामता शोक मे कुछ ऐसे ढंग से शमित होती है, जैसे धडधड़ाती नदी का वेग शांत समुद्र की बाँहो मे. वह देखता है—आसपास दर्द ! केवल दर्द !—सिर्फ एक आदमी का—जो सारी सृष्टि मे अनेक रूप होकर फैला है—वह आदमी है दलित. उसके देश अलग-अलग है, वेश अलग-अलग; भाषा जुदा-जुदा; मगर पीड़ा एक—जीने की पीड़ा ! भय एक—मृत्यु का भय ! कर्म एक—शोषित का कर्म ! 'खून दो-पैसे लो' परन्तु खून का परिमाण हर वक्त पैसे से ज्यादा होना चाहिए—ताकि वह कम होता रहे और जब कंकाल मे खून नहीं रहे तो वह दूसरों के शरीर पर अक्षर बन जाए—'खून दो'. इस कराहती दुनिया के दर्द को यदि राजनीति की भाषा न भी समेटती तो भी कवि की संवेदना उसे अनाथ नही होने देती—

'घातक समाज में मानवता जब लुप्तप्राय हो जाती है
बेकस असहाय गरीबों की, जब हाय-हाय छा जाती है,
मानवता का स्वर ऊँचा हो, वह राग चाहता है जीवन.'

(प्रलय-सृजन)

यह राग कवि ही दे सकता है. वह इस हेतु देश जाति की सीमाएँ छोड़ देता है. वह रूप की प्रशंसा करता है, इसलिए कि—

'यह दलितों की तीर्थ भूमि है, युग का प्रबल तकाजा
सर्व प्रथम साम्राज्यवाद का निकला यहीं जनाजा'.

(प्रलय-सृजन)

अपनी ही गोमुखी मे पड़ी माला के अंको से अंकशास्त्र की सीमा निर्धारित करनेवाले लोग इसके लिए सुमन के कवि को गाली दें तो दें. ऐसा कोई बन्धन साहित्यकार के लिए सिर्फ नागपाश है, जो उसे सच्चाई की सराहना से रोके और

उन बोधों पर अटकाए जिनकी जरूरत संवेदना के बाहर है. विद्वान् डॉ० त्रिगुणायत ने डॉ० सुमन की रूस-वंदक कविता का उद्धरण देते हुए लिखा—

> 'मैं इस प्रकार के कवि को नकली और गद्दार समझता हूँ, जो खाते भारत का रहे और गाते रशिया का रहे. हिन्दी कविता इस प्रकार की रचनाओं से निश्चित ही कलंकित हो गई है.' (शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त, भाग दो, पृ० १६१).

सुमनजी की लाल सेना वाली जो कविता है—उसमे 'लाल सेना' भारत पर आक्रमण करने के लिए नही बुलाई गयी हैं, वह सिर्फ शोषितों के हित की रक्षा के प्रतीक के रूप में उनके काव्य में आई है. क्या विद्वान् 'डाक्टर' यह नहीं चाहते कि दूसरे देशों के साहित्यकार गाँधी, नेहरू या इस देश के गौरव का गान करें ? पंचशील के क्षेत्र मे भारत अगुआ रहा और जब-जब भी यह प्रसंग उठेगा, भारत का वन्दनीय उल्लेख होगा, ईसा के जन्म के लिए जेरूसलम सम्मानित होगा, केनेडी की हत्या के लिए डल्लास पर थूका जायगा. यानी कोई कारण नही कि समाजवादी क्रान्ति के अगुआ के रूप में सुमनजी की कविताओं मे रूस प्रशंसित न हो. समानता की पुकार करनेवाला रूढ़िग्रस्त साम्यवादी नहीं हो जाता, साम्राज्यवाद के गुणों का दिग्दर्शक साम्राज्यवादी नहीं हो जाता. वाल्मीकि ने रावण के गुणों को प्रशंसा की तो वे रावणीय नही हो गये और कालिदास ने जानकी निर्वासन के प्रसंग मे राम की निन्दा की तो वे राम के प्रतिरोधी नहीं हो गये. राजनीति के साथ कवि के कर्तृत्व को घसीटना और उसके स्वतन्त्र चिन्तन मे बाधा उपस्थित करना विद्वानों के द्वारा बौद्धिक पराधीनता का आवाहन है.

वह युग ही जवानी और आग का था. सुमन के तन मे जवानी और मन में रवानी थी. क्रान्तिकारियो से सम्पर्क हुआ. पराधीनता, भूख और शोषण के प्रति राष्ट्रव्यापी आन्दोलन मे सुमन का कवि कूद पड़ा—इस समय नई आग, एशिया के जागरण या शोषण के विरुद्ध युद्धरत लाल सेना का आह्वान नहीं होता तो क्या मखमल मे लिपटी और इत्र मे बसी किसी अज्ञात रूपसी को आमन्त्रण दिया जाता ? सेजों के गीत लिखे जाते ?? जो विद्वान् कवि-मानस की इस प्रक्रिया को समझना नहीं चाहते, उनकी विद्वत्ता का देश तिलक लगाये या उसे मुँह पर पोत ले ? भगवान् उनकी अक्ल के भी मालिक है जो चलते तो है कवि पर शोध करने और हँसिया-हथौड़े का नाम देखकर ही उसे साम्यवादी करार देते हैं.

छायावाद के सबसे बडे पोषक और व्याख्याता आचार्य वाजपेयी ने सन् १९४० के आस-पास 'समाजवादी विचारों के क्षेत्र' को हिन्दी के 'श्रेष्ठ साहित्य-

सृजन का क्षेत्र' माना था (आधुनिक साहित्य, पृ० ३८९). १९३६ में प्रेमचन्द और समकालीन साहित्यकारों के द्वारा स्थापित प्रगतिशील मंच का प्रभाव बढ़ रहा था. दूसरे महायुद्ध में रूस की भूमिका ने प्रतिक्रियावादियों, फासिस्टों और शोषकों के विरुद्ध सर्वहारा वर्ग मे जो आस्था जगाई थी, उससे साहित्यकारों का एक बड़ा वर्ग रूस की ओर आकृष्ट हुआ. उन्हें अपने स्वप्नों और आकांक्षाओं की सार्थकता रूस की सफल क्रान्ति में दीख पड़ी. १८५३ में कार्लमार्क्स ने 'न्यूयार्क डेली ट्रिब्यून' मे विस्तार से लिखा था कि किस प्रकार अँग्रेज पूँजीपति भारतवर्ष पर दो तरफा आघात करके उसे अपने जाल में पूरी तरह फँसा लेना चाहते हैं. उसने यह भी उल्लेख किया था—यही 'जाल' स्वयं भारत की मुक्ति का कारण होगा. (देखिये मार्क्स-ऐंगिल्स भाग १). ये सारे संकेत उस शिकंजों को तोड़ना और कमजोर करना चाहते थे— जिन्हें तोड़ने की प्रवल इच्छा तत्कालीन कवियों की थी. इसलिए रूस या मार्क्सवाद को उन्होंने सराहा है—तो वाकायदा पूरे ब्योरों के साथ उसके अधीन नहीं हो गये. भारतीय प्रगतिवादी कवियों जैसे निराला, पंत, दिनकर, सुमन की यह चेतना आगे जाकर भारतीय सांस्कृतिक मानवतावाद मे समाहित हुई है. आरंभ से ही सुमन ने अपनी सांस्कृतिक चेतना को कहीं नहीं छोड़ा है. सुमन की कविताओं मे भारतीय प्रतीक, उदाहरण और चेतना के ही सैकड़ों उदाहरण हैं. रामकथा की उनकी प्रगतिवादी व्याख्या पूरे सन्दर्भो को सही अर्थ में समझने के लिये पर्याप्त है. 'इन गीतों के लिये तुम्हारा ऋणी रहूँगा आजीवन' कविता में **सुमन ने अपनी कविता का स्रोत प्रेम को स्वीकार किया है. आगे जाकर प्रेम-वियोग की आग ही दुःखी जनता के प्रति संवेदना की अग्नि और शोषकों के विरुद्ध क्रांति में वदल गई है.** प्रसाद के 'आँसू' की 'ज्वाला' भी तो यही है. इसलिए कवि को सीधे-सीधे साम्यवादी कह देना तत्कालीन सम्पूर्ण परिवेश के अज्ञान को ही सूचित करता है. जहाँ तक सुमन का प्रश्न है, **वे स्वभावतः प्रेमी और कर्मतः शिल्पी हैं. वहाव, आवेग और प्रभावित होना उनका धर्म है.**

'विश्वास वढ़ता ही गया' पुस्तक में उन आरोपों और आक्षेपों के संकेत भी मिलते हैं जो सुमन और तत्कालीन स्रष्टाओं पर लगाये गये थे. सुमन ने अपने सधर्मियों की ओर से इन आघातों का उत्तर देते हुए कहा था कि—'छोटे-मोटे आघातों से हार नहीं सकता मेरा मन.' इतना ही नहीं, इन तमाम आरोपों से उसका 'आत्म विश्वास वढ़ता ही गया.' प्रेयसी का मायाजाल अव उसके लिए सागर-सन्तरण का सम्वल है. प्यार की आग क्रान्ति के लिए चिनगारी वन गयी है—

'यह सच है कि तुम बहुत दूर हो, किन्तु तुम्हारी आग पास है.'

(विश्वास बढ़ता ही गया)

यही प्यार की आग तुलसी की कविता का भी रहस्य है—

'वही आग जिससे रत्नावलि ने
तुलसी का दीप जलाया.
युग-युग का सम्बल बन बैठी,
भक्त प्रवर को कामुक काया.'

अतः वह भी प्रेयसी की इसी आग से विषमता की कहानी ध्वंस कर देगा. उसकी प्रौढ़ता अब गहरे आत्मविश्वास में प्रकट हो गई है, ऊपरी खोल, नकाब और तमाम उबटन जलकर धातु का फौलादी रूप निखर आया है—यही वह सीमा है जो कवि को 'कबीर' बना देती है—

'ली ओढ़ धर्म की खोल पर हृदय सूना,
पूजन, अर्चन सब व्यर्थ, देवता पत्थर.'

(विश्वास बढ़ता ही गया)

'जल रहे हैं दीप जलती है जवानी' में सामाजिक वैषम्य ध्वस्त करने के जन-संकल्प को रामकथा की पृष्ठभूमि में देखने से रामकथा में एक मौलिक अध्याय जुड़ा है. महाकाव्य का औदात्य और घनत्व एक कविता में प्रतिष्ठित कर देने के लिए सुमन का कवि उपेक्षाओं को लाँघ कर परम्परा में उत्कीर्ण होगा.

'विश्वास बढ़ता ही गया' सुमन की प्रगतिवादी विचारधारा की अभिव्यक्ति में शीर्ष स्थान रखता है. यहाँ सुमन सच्चे क्रान्तिकारी की संवेदना से पूरी तरह परिवेष्टित हैं. निराला पर लिखी उनकी ऐतिहासिक लम्बी रचना और 'नई आग' जैसी उत्कृष्ट मंचीय कृति भी इसी पुस्तक में संगृहीत है. सुमन की एक विशिष्ट धारा का यह एक प्रतिनिधि संकलन है. हिन्दी संसार ने इसे 'देव पुरस्कार' से सम्मानित कर सुमन के महत्व पर मुहर लगाई है.

'पर आँखें नहीं भरीं'—सौन्दर्य-दर्शन की अनंत प्यास के पुनरावर्तन के रूप में सुमन के सम्पूर्ण कर्तव्य में (Relief of Art) मानी जायेगी. लोक-मंगल और साधना के स्वरों के साथ यौवन, सौन्दर्य और प्यार के गीतों का इसमें संगम है. कवि को लगता है कि उसके आत्म-मूल्यांकन का समय अब आ गया है. 'साँसों' के हिसाब में बात मध्यम पुरुष में कही गई है; पर असल में प्रश्न अपने से ही किये गए हैं—अपने सम्पूर्ण जीवन से—

'जो साँसें साँसों को छूकर गर्माईं ?
जो साँसें साँसों से मिल बहुत लजाईं ?'

'जिन साँसों को ठग लिया किसी छलिया ने ?'

× × ×

'कितनी साँसों की अलकें धूल बनी हैं ?—हिसाब दो.'

(पर आँखें नहीं भरीं)

'पर आँखें भरीं-भरी'—में युगरुपुप गांधी की मृत्यु के गहरे घाव हैं; बहुत मार्मिक, सशक्त और बापू के लिये हिन्दी की श्रेष्ठ श्रद्धांजलि.

'लालसेना' की पूजा के साथ गांधी को 'श्रद्धांजलि' सुमन की वैचारिकता पर प्रश्नचिह्न लगाती है. पर सुमन 'वाद' से नहीं बँधे हैं वे अपने अनुभव और आवेग के प्रति प्रतिबद्ध कवि हैं. उनकी सम्पूर्ण दृष्टि लोक-केन्द्रित है. वह जब जिस धारा को या जिस रेखा को लोकमंगल के लिए श्रेयस्कर मानते है स्वीकारते हैं. उनका मानवतावाद किसी वाद का पूरी तरह अनुसरण स्वीकार नहीं करता वह 'चयन' करता है; समन्वय करता है.

(—१९६४ ईसाब्द) × × ×

उपर्युक्त अध्ययन १९६४ मे किया गया था. उस समय सुमन का नया काव्य संग्रह 'विंध्य हिमालय' प्रकाशित नहीं हुआ था. परन्तु उसमें संगृहीत अनेक कविताएँ पत्र-पत्रिकाओं में निकल चुकी थीं. उन्हीं के आधार पर सुमन की तत्कालीन काव्यप्रवृत्ति के सम्बन्ध में इसी लेख में कुछ टिप्पणियाँ की गई थीं. जैसे कि यह कहा गया था कि सुमन नई कविताओं की ओर प्रवृत्त हुए हैं—पर उन्होंने उसे महज सतही रूप में देखा है. और वे उसे इसी रूप में व्यक्त कर सके हैं. यह भी कहा गया था कि सुमन के काव्य की ऊँचाई घट रही है, उनका वक्ता कवि पर हावी हो रहा है. राजनयिकता ने उनके कवि की 'दुर्गत' कर दी है. उन्होने भाषा, शैली और कथ्य तीनों स्तरों पर अपनी ही साधना से निर्मित पथ को छोड़ दिया है. इसका कारण है उनके आलोचकों द्वारा उन्हें भ्रान्त किया जाना. उन्हें किसी खास वाद से जोड़कर और किंचित् पुराना बताकर बदनाम करने की प्रतिक्रिया से उनमें बोखलाहट उत्पन्न हो गई है. इसी लेख का अन्तिम अंश ज्यों का त्यों उद्धृत करता हूँ—

डॉ० सुमन का मूलधर्म अब भटक गया है, यह और बात है कि वे श्रेष्ठ धर्म की तलाश में हों. परन्तु वे उम्र से जल्दी पक रहे हैं, उनका कवित्व उनके कर्मों, भाषणों और स्वप्नों में बिखर गया है—अन्ततः यह एक मंगलमयी दिशा है. परन्तु इतनी जल्दी उसकी आवश्यकता नहीं है. पार्वती तपस्या कर रही थी, तब ब्रह्मचारी शिव ने कहा था—

'किमित्यपास्या भरणानि यौवने
धृतं त्वया वार्धक शोभिवल्कलम् !
वद प्रदोषे स्फुटचन्द्र तारिका
विभावरी यद्यरुणाय कल्पसे !'
(कुमार सम्भव)

'अरे तुमने यौवन में ही वार्धक्यशोभी वल्कल पहन लिए. भला बताओ कि चाँद और सितारों भरी रात अरुणोदय की प्रतीक्षा करती है ? अरुणोदय की उज्ज्वलता, पवित्रता और जागरण का महत्व है—पर चाँद सितारों भरी रात का भी अपनी जगह कम मूल्य नहीं'.

विन्ध्य हिमालय के प्रकाशन के पश्चात् मुझे अपने ही विचारों का पुनर्मूल्यांकन करना आवश्यक जान पड़ता है.

यह सच है कि भाषा, शैली और कथ्य तीनों स्तरों पर सुमन बहुत बदल गए हैं. 'विन्ध्य हिमालय' में चिरपरिचित सुमन को अनेक कविताओं मे खोज पाना कठिन है. सुमन की रवानी और जोश; स्थिरता और सूक्ष्मता में बदल गये हैं. बहिर्मुखता बहुत कुछ अंतर्मुखता में परिवर्तित हो गई है. उपदेश और आदेश के स्वर आत्मावगाहन और व्यंग्य में बदल गए हैं. नई प्रकृति का उद्भव हुआ है. समाजवादी और रोमेटिक दोनों प्रकार के आग्रह विविधताओं में बिखर उठे हैं. भाषाविस्तार का स्थान उसकी मितव्ययिता ने लिया है. वक्ता उनके कवि को पहले की अपेक्षा बहुत कम प्रभावित कर रहा है.

यह नये उद्भव के चिह्न हैं. नवीन मार्ग खोजने की विकलता है परन्तु अपनी चिरपरिचित प्रवृत्तियों को छोड़ने या मार्गांतरीकरण के कारण उनकी काव्यात्मकता में कमी आ गई है. क्योंकि यह संभ्रम की दशा है. समाजवादी संवेदनाओं के आग्रह का त्याग करना भले ही कवि अपनी सचाई की ओर आने के लिए आवश्यक समझता हो; पर सच तो यह है—आज के सम्पूर्ण परिवेश में सामाजिक क्रांति और गरीबों तथा बेचारों के प्रति संवेदना की आवश्यकता बढ़ी है. प्रगतिवाद का युग तब तक समाप्त नहीं होगा—जब तक विषमता बनी हुई

है. नई कविता के सम्पूर्ण परिवेश और ट्रीटमेन्ट से उसे नई चेतना के अनुरूप बनाया जा सकता है—मुक्तिबोध इसके प्रमाण हैं.

कवि सुमन ने नवीनता को अपनाया है. पर वह उनकी समग्र चेतना का अंग नहीं बन पायी है. ऐसी स्थिति में अपनी मूल चेतना और प्रवृत्ति का त्याग करने से एक अन्तराल-सा उपस्थित हो गया है. पर मुझे लगता है कि सुमन की नई अभिव्यक्ति उनकी पुरानी आग (जो उस समय की 'नई आग' थी) को फिर से ग्रहण कर लेगी. क्योंकि जब कभी वे विविध प्रभावों और सामयिक दृश्यों से ऊबकर एक सुचिंतित जीवन-दर्शन की खोज करेंगे तो वह उन्हें पीड़ित मानवता में ही मिलेगा. विन्ध्य हिमालय की कुछ सशक्त कविताएँ इसका प्रमाण है. सामयिक प्रभावों पर तत्कालीन काव्य लिखना तभी सार्थक हो सकता है, जब कि वह युगबोध और जीवनसत्य की अभिव्यक्ति कर सके. क्योंकि व्यक्तियों, प्रसंगों और संदर्भों को कविता में उतारकर उसकी जीवनी शक्ति और सम्प्रेषणधर्मिता बढ़ाई नहीं जा सकती.



हिल्लोल : कवि सुमन का प्रथम काव्यसंग्रह

'हिल्लोल' और सुमन दोनों शब्द कवि के विशेष भावात्मक झुकाव के प्रतीक हैं. कवि जीवन के उद्‌भव की एक बहुत छोटी-सी लेकिन बहुत गहरी-सी उमंग 'हिल्लोल' में संचित है. यह आवेश और संवेग की कविता है. यौवन की सबसे मादक लहर कवि के व्यक्तित्व को छू कर लौट गई है. पर उसके 'करेंट' की झनझनाहट उसे बराबर अनुभव हो रही है—यही अनुभूति इस कृति में व्यक्त हुई है—

'जिसके सहारे मैं चला
जिससे हृदय को सुख मिला,
उसका दिया दुख-भार भी
स्वीकार है स्वीकार है ।

'हिल्लोल' बहुत सहज कविता है. मैं पूरे काव्य को एक ही कविता मानता हूँ. क्योंकि कवि की भावुक टीस, संभ्रम और भोली मादकता—जिसे पं० केशव-प्रसाद मिश्र के शब्दों में दार्शनिक तटस्थता कह सकते हैं—हिल्लोल का कथ्य है. जब से प्रेयसी एकाकी छोड़ कर चली गई है, तभी से पतझर की खोज आरम्भ हो गई है; तभी से प्रेमी 'कल-कोकिल कूजित मधुवन में' उसकी मुस्कुराहट खोजने लगा है; 'जनरव की भीषण हलचल में' भी वह 'किसी को' खोया खोया-सा खोजता रहता है.[1] यही खोज सारे 'हिल्लोल' में बिखरी है.

असफलता की टीस इतनी गहरी हो गई है कि कई बार शीशमहली लौ की तरह चारों ओर प्रतिबिम्बित हो जाती है—

'जिस पनिहारिन की गगरी पर
मैं ललचाया वह ढुलक गई ।

---

१. 'खोज'—कविता, पृ० ५१

जिस-जिस प्याली पर धरे अधर
वह वह छूते ही छलक गई।'

लेकिन वास्तव में यह दशा खेद, निराशा और संभ्रम की दशा है. एक ही प्रेयसी है, जो अपने वियोग से या पाषाणी हृदय (पत्थर के थे देव हमारे) के कारण बहुमुखी असफलता का बोध कराती है. ये पंक्तियाँ इसकी प्रमाण हैं—

'यों तो मेरे जीवन-पथ पर
कितने चाहक गाहक आए
पर एक अकेले तुमने ही,
मेरे हित आँसू बरसाए
तुमको भूलूँ भी तो कैसे ?'

इसलिए 'हिल्लोल' एक कविता है; एक के लिखी गई है. उसी की हूक प्रेमी को साल रही है.

हिल्लोल में कोई सुचिन्तित काव्य-दर्शन या जीवन-दर्शन नहीं है. भूमिका मे कवि ने लिखा है कि—

"अपने ही हृदय के विषय मे कुछ कहा है. सुख-दुख, आशा-निराशा-पूर्ण क्षणों मे प्राणों को मथ कर जो भी अर्द्धस्फुट तुतले शब्द आवेशवश अथवा स्वभावतः निकल पड़े हैं, बिना किसी आवरण के आपके समक्ष प्रस्तुत हैं."

हिल्लोल का काव्य जितना सहज और भोला काव्य है उससे कम सहज और कम भोली यह भूमिका नहीं है. वस्तुतः यही सब कुछ इस संग्रह में है. एक अजीब-सी मस्ती और भावुकता पृष्ठ-पृष्ठ पर बिखरी है—

'हम किधर चले, क्या बतलादें, चल दिए जिधर को राह मिली'.

इस कृति मे इतने प्रभाव संकलित हुए है कि उक्त पंक्ति अपने शब्द-शब्द मे सार्थक हो गई है. इतिवृत्तात्मक युग के सबसे बड़े कवि मैथिलीशरण गुप्त के स्तवन के साथ छायावादी महाकवि प्रसाद के प्रति भी उतनी ही निष्ठा यहाँ सँजोई गई है. छायावादी पन्त के गहरे प्रभावों के साथ ही हालावादी बच्चन की मधु-शाला का रस भी इस कृति में अनास्वाद्य नहीं है. यों कहें कि इतिवृत्तात्मक युग की कथा, छायावाद का दार्शनिक स्पर्शो वाला रोमांस, हालावाद की खुमारी के साथ प्रगतिवादी तड़प के प्रभावों का संकलन 'हिल्लोल' है, तो कोई गलत बात नहीं है.

यदि यह प्रवृत्ति केवल प्रभावों के संकलन तक ही परिमित रह जाती तो यह आरम्भ का ही दुर्भाग्यपूर्ण अन्त होता, परन्तु ग्रहण की उमंग के साथ ही मार्ग का अन्वेषण भी जारी है. कवि प्रेम में, प्रकृति में, मस्ती में कविता की तलाश करता है—पर अन्ततः उसे वह मानवीय पीड़ा में मिलती है. यह पीड़ा ही तत्कालीन काव्य-धारा का युग-सत्य थी. अतः कवि सम्पूर्ण प्रभावों को अस्वीकार करके इसी संवेदना को आत्मसात् कर लेता है.

वियोग की पीड़ा का सबसे निकट सहचर शोक है. यदि वियोगी में आत्मप्रसार की किंचित् क्षमता है तो वह दूसरों के कष्ट से अपने को जोड़ लेता है. सामन्ती युग का वियोगी इस संवेदना का इतना ही प्रसार कर सकता था कि—'मा भूदेवं क्षणमपि च ते विद्युता विप्रयोगः' लेकिन 'जन-युग' का कवि प्रेम की पीड़ा को ही मात्र पीड़ा नहीं मानता. मनुष्य को आधि-व्याधि, अभाव आदि की पीड़ा को महत्व देता है—

'जग-जीवन के संघर्षण में नहीं सुनाई पड़ती चाहें
धीमी,सी पड़ गई प्रिये हैं, प्यार और पीड़ा की आहें ।'

इसलिए प्रभावों को ग्रहण करने की कवि सुमन की प्रवृत्ति, उस नवीन एवं विनम्र जिज्ञासु की प्रवृत्ति है—जो अहंग्रस्त, जड़ और आत्म-केन्द्रित नहीं है. और इसीलिए सभी विशेषताओं के प्रति उसके मन में एक भोला और असीम पूजाभाव है स्वीकार और अस्वीकार या रुचि और अरुचि का तीखा और निर्दिष्ट बोध न होने के कारण उसकी प्रवृत्ति में अजीव से मिश्रण हो जाते हैं, जिससे स्पष्ट, तीखा और विकल्परहित व्यक्तित्व नहीं उभर पाता. लेकिन ईमानदार खोज के लिए यह व्यापक संचयन बहुत आवश्यक है. जब पर्याप्त संचयन होता है; बोध तीव्र होते हैं—तब कहीं जाकर न-कार उभरता है. और वस्तुतः वही नकार सार्थक और उपादेय है, जो फैशन के लिए किया गया नकार नहीं है—बल्कि जिसके पीछे स्वीकार की इतनी बड़ी पृष्ठभूमि है. अतः हालावाद, रोमांसवाद आदि के नकार का हिल्लोल के अन्त-अन्त में उभरी लोक-चेतना और शोक की विस्तृत भावभूमि इतनी गम्भीर है कि वह कवि को एक परिपक्व चिन्तन की ओर ले जाती है.

अतः हिल्लोल में भोली हूक के साथ एक दिशाहारा जिज्ञासा उस असंतोष को व्यक्त करती है, जो कुण्ठा में जाकर अन्तर्लीन नहीं हो जाता; वरन् नई खोज की व्याकुलता पैदा करता है. केवल यही बात है—जिससे लगता है कि सुमन का छायावादी संस्कारोंवाला मन इसी हिल्लोल चक्र में भटक कर

नहीं रह जाएगा—वह उन दिशाओं की खोज करेगा, जिससे एकांतिक भावुकता का आत्मनिष्ठ काव्य अपनी अर्थवत्ता के लिए अगले पड़ावों की ओर निकल पड़ता है. हिल्लोल में इस प्रवृत्ति को व्यक्त करनेवाली सबसे मुखर कविता—'संघर्ष प्रणय' है. कवि जानता है कि यौवन की विवशता है—प्रेम की भावाकुलता. 'यौवन आशा और अभिलाषा की राशि है. इसमें कौन मदहोश नहीं होता' ?[1] लेकिन प्रणय की बेहोशी में भी उसे बाहर की दुनिया का होश रहता है. वह प्रेयसी से कहना चाहता है कि 'मैं मनुष्य हूँ आखिर, बहक सकता हूँ. इसलिए अनुरोध करता हूँ कि मेरे पथ में तुम अपना अंचल न फैलाना !'—

'मैं मानव हूँ मेरे पथ पर,
अपना अंचल मत फैलाना ।'

क्योंकि मैं ऐसे युग में पैदा हुआ हूँ, जो संत्रासों का युग है. विषमता की ट्रेजेडी जीवन-रस को कटु बना रही है. सभी को जहर पीना पड़ रहा है. ऐसी स्थिति में कैसे कोई आदमी अपने ही सुख-दुख, या युवा-प्रेम की तरंगों में बेखबर सो सकता है ?—

'लाचारी है आखिर मैंने ऐसे युग में जन्म लिया है
जहाँ सभी ने रूप-सुधा को छोड़ गरल का पान किया है ।'

इसलिए प्रेयसी से क्षमा चाहते हुए, उस नायक की तरह, जो विवाह के बाद प्रथम-गृह-प्रवेश के समय युद्ध के नगाड़े की आवाज सुनकर राष्ट्र के आवाहन पर पत्नी के अंचल को तलवार से काटकर युद्ध में चल देता है—हिल्लोल का प्रेमी भी लबरेस यौवन में प्रेम की तरंगों को काटकर जीवन के किनारे पहुँच जाता है—

'विस्तृत पथ है मेरे आगे उस पर ही मुझको चलना है,
चिर शोषित असहायों के सँग अत्याचारों को दलना है ।'

वह समस्त तरानों को छोड़कर उन सोये हुए अफसानों को जगा देना

---

१. 'आशा अभिलाषा का दिन है
सब कहते मुझमें यौवन है
तुम्हीं बता दो यौवन-मद में कौन हुआ मदहोश नहीं है ।
मेरा इसमें दोष नहीं है'
(हिल्लोल)

चाहता है, जिनसे इस विषम संसार में विप्लव छिड़ जाए. कवि के नाते उसे अपने उत्तरदायित्व का बोध हो जाता है—

'आज चाहती दुनिया सुनना मेरी वाणी में रण-भेरी'

इसी विप्लव की चेतना के कारण उसके काव्य में हँसिया-हथौड़े के स्वर सुन पड़ते हैं—

'भीषण तोपें, बम हत्यारे
छिप गए कहीं मुख मोड़े से
आश्चर्य विश्व कर लिया विजय,
हँसिये से और हथौड़े से'
(जागरन)

इस तरह हिल्लोल के अन्त में 'जीवन के गान' का आरम्भ छिपा हुआ है. अन्तिम कविता में प्रेम की मदहोशी और सुपुप्ति का अन्त और 'जागरण' का आरम्भ सूचित होता है—

'देखो वे नंगे भिखमंगे
आए हैं नूतन वेश लिए
× × ×
आओ उठो देरी न करो,
उनका स्वागत करना होगा
सुखशान्ति स्नेह समभावों से,
जग का अंचल भरना होगा।'
(हिल्लोल-अंतिम पंक्तियाँ)

वैयक्तिक प्रेमावेश की भटकन की समाप्ति और नए मार्ग का संधान कवि ने कर लिया है. इसलिए हिल्लोल एक विशिष्ट मानस-यात्रा का सूचक काव्य है.

कला की दृष्टि से सद्यः जात सुमन का यह संकलन अत्यन्त आशाप्रद है. जन्म से ही सुमन एक सुसंस्कृत, कलादृष्टि से सम्पन्न कवि हैं. इसका कारण अध्ययन-मनन की समृद्ध पृष्ठभूमि है. भले ही इस संग्रह में कवि कोई विशिष्ट अभिव्यंजना प्रणाली का निर्माण नहीं कर सका है. परन्तु इस 'अर्द्धोन्मीलित विकास' के चरणों में भी उसकी भाषा में स्निग्धता और अभिव्यंजना में सफाई है. कवि अपनी 'तुतली' जबान में भी पूरी आत्माभिव्यक्ति कर सका है. उदाहरण के लिए निम्न पंक्तियों में निर्लिप्त खिन्नता की समर्थ अभिव्यक्ति को लिया जा सकता है—

'कुछ कह लिया कुछ सुन लिया
कुछ बोझ अपना बँट गया
अच्छा हुआ तुम मिल गईं,
कुछ रास्ता ही कट गया।'

भावतरंग और कल्पना को निम्न पंक्तियों में, कितनी उपयुक्त पदावली में व्यक्त किया गया है ?—

'जब झूम चूम लेते हो तुम
वारिधि के दृग की मदिर कोर
लहरा उठता है बेसुध-सा,
छल छपक-छपक हिल-हिल हिलोर।'
देते तुम अपने अधरों को,
उसके नव मधु में बोर-बोर
विस्मित-सा देखा करता हूँ, तब मैं अपनी ही हार जीत
मेरे पावन मेरे पुनीत

  

'मन मन्दिर की कालिख साजन, दृग जल से धोता रहता हूँ' इन पंक्तियों में कल्पना के नए आयाम की तत्पर खोज का भी आभास होता है. हिल्लोल मे अनेक मधुर, कोमल और हार्दिक भावना से सम्पृक्त पंक्तियाँ मिलती हैं.

भावाकुल सुकुमार कवि प्रायः चिड़िया, लहर, पुष्प, चाँदनी और मदिरा लीन है. सम्पूर्ण 'हिल्लोल' में इन्ही उपमानों और भावनाओं की अनेक बार आवृत्ति हुई है. छायावादी प्रकृति-चित्रण की कविताएँ—शशिबाला, चिरैया, तितली आदि भी बड़ी सुकुमार और स्निग्ध कविताएँ है. अभी कवि का उपदेशक और उपाध्याय नहीं जन्मा है. सब उसकी आपबीती है. अन्तः अनुभव की मार्मिकता इस कृति मे सर्वत्र दीखती है.

यह युवा प्रभावों की कविता है. आगे जाकर यह यौवन निजी वेदना की अपेक्षा लोक-वेदना में विनिमज्जित होने के लिए तत्पर जान पड़ता है. इस प्रकार 'हिल्लोल' सुमन के आगामी कल की भूमिका बन कर उनकी गतिशीलता को सूचित करता है.



जीवन के गान

'हिल्लोल' के रूमानी, आत्मनिष्ठ कवि के समाज सापेक्ष व्यक्तिबोध की सूचक कृति है—'जीवन के गान'. सुमन को दूसरों के लिए ही 'सौरभ-सुगन्ध मिली है,* यह बोध इस कृतित्व के मूल में है. इसलिये 'जीवन के गान' को विचार से अधिक 'आवेश' से प्रेरित मानना चाहिए. इसका एक कारण यह और भी है कि यहाँ सुमन की अभिव्यंजना में जो मानसिक उलझन है, उसके समर्पण में जो रागमिश्रित संवेदना है—वह 'जीवन के गान' को विशुद्ध प्रगतिवादी स्वरूप में प्रस्तुत नहीं करती—वल्कि आवेग और विचार के वीच किसी विन्दु पर स्थापित करती है. स्वयं लक्ष्य के वारे में सुमन का यह कथन उनकी इस काल की मन:स्थिति का सूचक है—

'मेरे गीतों के वारे में
कुछ भी गेय अगेय न पूछो
मैं अपने में आप नहीं हूँ
मुझसे मेरा ध्येय न पूछो'.

'जीवन के गान' की अनेक पंक्तियों में, अर्थ की परतें खोलने पर एक रूमानी कवि के दिशा-परिवर्तन के दिलचस्प संकेत मिलते हैं. जैसे वह प्रेयसी से कहता है कि—

(१)

ये मन की बातें गढ़ गढ़ कर
मैं क्या पाऊँगा पढ़ पढ़ कर
मुझको दो ऐसे गान सिखा,
मैं मिट जाऊँ गाते-गाते.

(पृ० २८)

---

* सौरभ-सुगन्ध मिली सुमन को
दूसरों के ही लिए —पृ० ३१

(२)

प्रेयसि मेरी निश्वासों में विप्लव के विद्युत्कण भर दो
मेरे स्वर में जीवन भर दो.

(पृ० ७८)

(३)

कर्म पथ पर तुम न डालो अब अधिक व्याघात.

(पृ० ४६)

(४)

मेरा पथ मत रोको रानी.

(पृ० ६३)

(५)

जब तक तुम्हारे प्यार की पतवार होगी,
मैं अगम सागर पार कर लूँगा.

(पृ० ६३)

कवि मूलतः कहाँ बँधा है, उसकी ताकत और उसकी कमजोरी क्या है—यह इन पंक्तियों से साफ जाहिर है. गाते-गाते मिट जानेवाले गान और स्वर में विप्लव प्रेयसी उतना नहीं भर सकती, जितना कि लेनिन, मार्क्स, रुस्तम सैटिन या शिवदानसिंह चौहान* भर सकते थे. परन्तु रूमानी कवि की समाजमूलक कृति का स्रोत वैचारिक रूप में भले ही कहीं अन्यत्र हो; भावना के रूप मे वह प्रेयसी के भीतर ही है.

कवि की इस नियति ने 'जीवन के गान' को प्रगतिवादी रुक्षता और रूमानी सुकुमारता के बीच बड़ी खूबसूरत जगह स्थापित कर दिया है. इसलिए ये गीत प्रगतिवादी आक्रोश को कम और संवेदना को अधिक व्यक्त कर सके है. दूसरे शब्दों में इस संग्रह में विशुद्ध प्रगतिवादी स्वर नगण्य हैं—दो धाराओं के संगम स्वर हैं.

अभिव्यंजना शिल्प की दृष्टि से भी यही बात कही जा सकती है. गेयता, गीतों के छोटे मीटर, शब्दचयन में कोमलता के आग्रह और बारीक कला-विधान

---

* भूमिका में प्रगतिवादी विचारों के लिये कवि ने शिवदानसिंह चौहान के प्रति कृतज्ञता प्रकट की है.

कवि की मन:लोक की विवशता को छुपा नहीं पाए हैं. फिर भी यह कृति पुराने संस्कारों को काटने की व्यग्रता और नई दिशा की ओर प्रवृत्त होने की कशिश को प्रकट करती है. नंगे भिखमंगों की टोली जो कुछ-कुछ परिवर्तित-सी बोली बोल रही है और नव-संघर्ष का संकेत दे रही है—वास्तव में कुछ-कुछ परिवर्तित सुमन के मन का संकेत है—

'नंगे भिखमंगों की टोली
शोषक के प्रति बोल रही
कुछ-कुछ परिवर्तित-सी बोली
ऐसा लगता है होना है कुछ
जीवन में नव-संघर्ष सखे।'

(पृ० १९)

एक ईमानदार कवि के नाते सुमन ने स्वयं संकलन के आरम्भ में स्वीकारा है कि उसका कवि वैचारिक परिवर्तन को कविता में यथार्थ का बाना नहीं पहना सका. इसका कारण उसने दिया है कि—

'अभी मैं स्वयं उस खेमे से निकल रहा हूँ, जो चारों ओर से घोर निराशा, बेकारी और अनिश्चितता के वातावरण में जकड़ा हुआ है. मैंने अभी तक प्रेम में असफलता, मिलन में विरह की आशंका तथा सामाजिक विषमता के चक्करदार रेंहट से ही अपने चारों ओर के संसार का अवलोकन किया है'.........

'एक प्रकार से मैं अभी व्यक्तिवादी ही रहा हूँ. क्योंकि समाज की नई शक्तियों के साथ एकात्मता स्थापित करने के विषय में मन में विकल्प था.' अपने 'हिल्लोल'-काल की मन:स्थिति के बारे में उसका विचार है कि तब वह मात्र संवेदनशील द्रष्टा और नये जीवन का स्वागतेच्छु ही बना रहा.

'जीवन के गान' में कवि अनुभव करता है कि वह भी इस संघर्ष का एक अंग है और उसमें सक्रिय भाग लेने के लिए, उसका अभिन्न अंग बनने के लिए सजग हो उठा है 'फिर भी उसकी वाणी संघर्ष को सक्रिय रूप प्रदान नहीं कर पायी.' यह आत्म-स्वीकार एक ओर कवि के आत्म-संघर्ष और दूसरी ओर वैचारिकता को भीतरी सचाई से एकात्म करने की दृढ़ इच्छा का प्रतीक है, लेकिन 'जीवन के गान' में ही अन्ततः कवि अन्तर्विरोध को समाप्त कर, लोक-चेतना और सैद्धांतिकता के अपने विचार को कविता में जी सका है. यहाँ लगता है कि सुमन आत्म-द्वन्द्व में विजयी हो गये हैं और एक स्पष्ट और निभ्रांत मार्ग की ओर बढ़

चले हैं. 'विद्रोह करो, विद्रोह करो' 'तव समझूँगा अभियान सफल,' 'सुन रहे हो क्रान्ति की आवाज,' 'यह किसका कंकाल पड़ा है ?' आदि कविताएँ अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व में प्रगतिवादी हैं—

(१)

मनमानी सहना हमें नहीं,
पशु बन कर रहना हमें नहीं,
विधि के माथे पर भाग्य पटक
इस नियति नटी की उलझन से
विद्रोह करो विद्रोह करो.

(२)

चूस कर जिसको निचोड़ा,
रक्त भी जिसका न छोड़ा
वह लिए हँसिया हथौड़ कर चुका है रोष फन की—
कील ढीली आज.
सुन रहे हो क्रांति की आवाज.

यह स्वर सुमन के पिछले तमाम आग्रह, अनुरोध, विवशता, प्रयत्न आदि के लिजलिजे स्वर से भिन्न और विशिष्ट है—ये ही कविताएँ वस्तुतः प्रलयसृजन की भूमिका हैं.

संग्रह के आरम्भ मे कुछ कहना आवश्यक जानकर सुमन ने अपने परिवर्तित विचारों की घोषणा की है. यह एक तरह से प्रगतिवादी रचनाओं का बचाव और घोषणा-पत्र है. क्योंकि जहाँ इसमें एक ओर प्रगतिवाद पर किये आक्षेपों का उत्तर है. वहीं दूसरी ओर उसकी प्रकृति, रीतिनीति और सम्भावनाओं का प्रतिपादन है. सशक्त गद्य और स्पष्ट वैचारिकता युवा कवि की दृढ़ता और नवीन अभियान की सूचना देती है. परन्तु कविताओं में—जैसा कि कहा जा चुका है—वह इस दृढ़ता और ओज को ज्यों का त्यों कायम नहीं रख सका है. इसे कवि ने स्वयं स्वीकारा भी है. परन्तु यहीं उसने वैचारिक प्रतिबद्धता की घोषणा की है. अपने समकालीन रूमानी और पूर्ववर्ती छायावादियों की आलोचना करते हुए वह स्वयं अपनी आलोचना भी कर गया है. 'हिल्लोल' में व्यक्त अनिश्चय और रूमानी भावना को आड़े हाथों लेते हुए उसने कहा है कि यह बेजा बात है कि सैद्धान्तिकता को छोड़ कर, मानसिक स्थितियों का हवाला देते हुए कवि दूसरों की सहानुभूति का भिखारी बन कर खड़ा हो.

शाश्वत सत्य, भावावेश के क्षण, रचनाकार का अलौकिक संसार, स्वप्नशीलता जैसी छायावाद की उपाधियों को अस्वीकारते हुए उसने कहा है कि यह मध्यवर्गीय साहित्यकार की फुर्सती कलाबाजियाँ हैं. आचार्य शुक्ल का मत भी है कि 'आत्मा से कोई काव्य-रूप नहीं निकलता, वाह्य जगत् के प्रभावों की समष्टि से निकलता है.' गत्यात्मक भौतिकवाद की वैज्ञानिक विचारधारा ही लोकजीवन और कल्याण के लिये महत्वपूर्ण है.

नवयुग की संस्कृति का जन्म हो चुका है, फिर भी छायावादी पुराने मोह में पड़े हैं. व्यक्तिवाद तथा आदर्शवाद के संसार में विचरण करते हैं. यह गलत है. या तो उन्हें युग का आह्वान स्वीकारना होगा या अँधेरे में जा छिपना होगा. आज इस संकटग्रस्त संस्कृति की समस्या को सिर्फ प्रगतिवाद ही हल कर सकता है. इसकी सुमन ने स्पष्टतः घोषणा की.

'दिनकर,' 'नवीन' आदि के आरोपों का जवाब देते हुए सुमन ने साफ-साफ कहा कि प्रगतिवादी न तो भाड़े के कवि हैं, न प्रेम, विरह, तृष्णा, वासना के उन्मूलक या विरोधी. वे केवल परिवर्तित मूल्यों को महत्व देते हैं और नये युग की आवाज सुन रहे हैं. सुमन का कहना है कि 'प्रगतिवाद जीवन और साहित्य का नया दृष्टिकोण है, जीवन की दौड़ में अगला कदम है.' उसे कोई नाम दे दिया जाये—फर्क नहीं पड़ता. नवीन मानसिक जीवन के विशृंखल होने का कारण सुमन ने भी मार्क्सवादियों की भाँति पूँजीवाद ही माना है. पूँजीवाद से उत्पन्न विसंगतियों का अवश्यंभावी परिणाम प्रगतिवाद का जन्म है.

अपने विचारों की इतनी स्पष्ट, निर्भ्रांत और तीखी घोषणा फिर कभी सुमन ने नहीं की. अतः 'कुछ कहना आवश्यक था इसलिए' सुमन ने जो कहा है वह प्रगतिवाद के साथ स्वयं सुमन की अपनी वैचारिक प्रतिबद्धता का दस्तावेज है.

सुमन के विचार 'जीवन के गान' में यथासम्भव पूर्व पृष्ठों में उल्लिखित सीमा के भीतर व्यक्त हुए हैं. परन्तु जहाँ वैचारिक प्रतिबद्धता 'भूमिका' में इतनी निर्धूम और प्रखर है—वहीं कविता में प्रभावों और अनुभूतियों के स्रोत बिखरे-से प्रतीत होते हैं. इसका स्पष्ट सम्बन्ध कवि के परिवेश और विचारों के आयाम से है. 'भूमिका' में सामाजिक विशृंखलता का कारण वह पूँजीवाद को मानता है, परन्तु कविताओं में पूँजीवाद के साथ ही उसने साम्राज्यवादी ताकतों का भी विरोध किया है और तत्कालीन राष्ट्रीय कवियों की तरह 'स्वतन्त्रता' के गीत गाए हैं. 'पथ भूल न जाना पथिक कहीं' प्रसिद्ध कविता में उसका पथ 'आजादी' की ओर ले जानेवाला ही है—

'कुछ मस्तक कम पड़ते होंगे
जब महाकाल की माला में
माँ माँग रही होगी आहुति
जब स्वतन्त्रता की ज्वाला में
पल भर भी पड़ असमंजस में
पथ भूल न जाना पथिक कहीं।'



सुमन उपवन में खिलेंगे
और फिर हम तुम मिलेंगे
किन्तु जब हो जाएगा हिन्दोस्ताँ आजाद
जेल में आती तुम्हारी याद.

सुमन पर एक साथ क्रान्तिकारियों और समाजवादियों का प्रभाव हुआ था. यद्यपि क्रान्तिकारियों का समाज-दर्शन भी साम्यवादी ही था, परन्तु उनका प्रथम चरण साम्राज्यवादी ताकतों से देश को मुक्त करना था, जबकि प्रगतिवादी केवल पूँजीपतियों को ही सारी विपत्ति की जड़ मानते थे. 'जीवन के गान'-काल में तो सुमन पर भावात्मक रूप में क्रान्तिकारियों का अधिक प्रभाव था और वैचारिक रूप में समाजवादियों का. इसीलिए दोनों के प्रभावों की अन्विति इस कृति में हुई है. उसकी अगली दो प्रगतिवादी रचनाओं में वह पूरी तरह समाजवादी विचारधारा के प्रति समर्पित हो गया है और प्रचलित राष्ट्रीय धारा से एक भिन्न लेकिन समानान्तर धारा में वह निकाला है.

'काव्य' की दृष्टि से यह संग्रह लेखक के पिछले संग्रह से बहुत आगे है. भाषा अधिक सँवरी है. शिल्प में सादगी के साथ शक्ति का संयोजन हुआ है. चित्र उपस्थित करने की क्षमता बढ़ी है. भावात्मक एवं वैचारिक दृष्टि से तो 'जीवन के गान' सुमन को नया परिवेश और अर्थ देते है. कवि को आन्तरिक शक्ति और प्रेरणा देने, उत्साहित करनेवाला नवीन आस्थामय स्वर उसे पिछली निराशा और आशंकाओं से उबार सका है. मैं व्यक्तिश: ऐसे तरुणों को जानता हूँ जो सुमन की 'पथ भूल न जाना पथिक कहीं' कविता से प्रेरित और प्रभावित हुए हैं—

'क्या हार में क्या जीत में
किंचित् नहीं भयभीत मैं

संघर्ष पथ पर जा मिले यह भी सही,
वह भी सही वरदान मागूंगा नहीं।'

जैसी शक्ति, साहस और उत्साह से भरी अनेक कविताएँ इस संग्रह में उपलब्ध हैं. 'मरघट की ज्वाला' एक भिन्न प्रकृति की रचना है, जिसमें मृत्यु की यथार्थता का जीवन की अपेक्षा ऊँचा स्वर सुनाई देता है. परन्तु वह रचना प्रासंगिक है. हाँ, अन्त में जो यह कहा गया है कि एक ओर मरघट की ज्वाला धधक रही है और दूसरी ओर हमारी नौका भी चल रही है—उसमें यही कहा गया है कि मृत्यु की अनिवार्य स्थिति के बावजूद मनुष्य के जीवन की गति कभी उससे आक्रान्त नहीं है. इसे भी एक तरह से चुनौती का स्वर माना जा सकता है.

प्रेरणा, उत्साह, अन्तर्द्वन्द्व, क्रान्ति की घोषणा, सामाजिक विषमता सम्बन्धी एक दर्जन से अधिक सुन्दर कविताएँ इस संकलन में हैं. अधिकांश कविताएँ हृदय को छूती हैं और कवि के भावसंवेद्य मन का परिचय देती हैं.

यद्यपि सुमन यह अनुभव करते हैं कि 'अभी मैं अपने जीवन के गान गा ही कहाँ पाया हूँ'—परन्तु उन्होंने उनका श्रीगणेश कर दिया है. इसलिए यह कृति उनके आविष्ट, लोकसंवेद्य मन का पहला सोपान है जो अपनी कमजोरी के बावजूद उनके दृढ़ संकल्प और आस्था की प्रतीक है.



प्रलयसृजन

प्रलयसृजन कवि सुमन की निर्भ्रांत, निर्विकल्प विचारधारा एवं अविचल निर्णय और अविभाजित निष्ठा का प्रतीक काव्यसंग्रह है. अपने जन्मकाल में जो कवि प्रेम-रोमांस में डूबता-उतराता था, वही अब शोषित जनता के लिए पूर्णतः समर्पित हो गया है. इसलिये कदाचित् वह अभिव्यंजना के स्निग्ध-वर्तुल मार्ग को छोड़कर कंकर-पत्थर के खुरदुरे मार्ग पर सीधे-सीधे चल दिया है.

रूमानी कल्पना को पूर्णतः क्षत विक्षत कर देनेवाली सजग सामाजिक चेतना के हाथ से 'काव्यात्मन्' का परिधान छूट-सा गया है. 'विश्वास बढ़ता ही गया' में कवि ने कहा है कि—

'इस विभीषिका पर संज्ञागत
जपता 'कला कला' की माला
तो धिक् धिक् मानव तन मेरा
निष्फल दग्ध हृदय की ज्वाला.'

'कला' पर अपना ध्यान केन्द्रित करते हुये मनुष्य पर अपने को न्यौछावर करनेवाली चेतना सदा सराही जाती है. परन्तु भीतरी फोर्स और तीखी संवेदना यदि प्रतिभा से संपृक्त हो जाती है—तो अनिवार्यतः कलाविहीन कविता भी गहरे प्रभाव और मथ देनेवाला आन्तरिक क्षोभ पैदा करती है. लेकिन 'प्रलयसृजन' में यह क्षोभ, यह कशमकश कहाँ छूट गई है ? कला की दृष्टि से यदि उक्ति सपाट हो तो चिन्ता की कोई आवश्यकता नहीं है, परन्तु यदि यह सपाटत्व प्रभाव की दृष्टि से भी है, तो चिन्त्य है क्योंकि कविता के माध्यम से कहा गया सत्य निश्चित रूप से सिद्धांत ग्रन्थों या सपाट वक्तव्य या पत्रकारिता से हटकर तो होना ही चाहिए.

सुमन के रचना क्रम और मनःसंस्कार पर ध्यान देने से 'प्रलयसृजन' की कमजोरी के सूत्र मिल जाते है. कवि ने विशुद्ध कर्तव्यभावना के रूप में समकालीन पीड़ा की व्यंजना की है—

'सार्थक कण कण यहाँ पर,
यह समय का साज
थी जरूरत इसलिए ही,
मैं यहाँ पर आज'.

परन्तु यह पीड़ा उस स्तर की संवेदना नहीं बन सकी है—जिस स्तर पर उसे काव्य का रूप दिया जा सके. केवल बौद्धिक सहानुभूति न तो व्यक्तित्व की कविता हो सकती है और न शब्दों की कविता. गलती से इसका यह अर्थ न लगाया जाये कि बौद्धिक संवेदना कृत्रिम होती है. वस्तुतः यह प्रज्ञा का पहला सोपान है. या तो पीड़ा से गुजर कर संवेदना का रूप बनता है या बौद्धिक सहानुभूति से गुजर कर. सुमन मजदूर, किसान या शोषितों में से न तो हैं और न रहे हैं. इसलिये उनकी संवेदना बौद्धिक सहानुभूति के मार्ग से ही वहाँ तक पहुँच सकती थी. यदि कविता अंतरंग जीवन की सचाई है, तो जब तक यह संवेदना व्यक्तित्व के रोम रोम में नहीं बिंध जाती तब तक वह कविता नहीं बनती. 'प्रलयसृजन' में लालसेना, हँसिया हथौड़ा, मजदूर किसान, शोषित पीड़ित आदि की आवृत्ति से ही यह मान लेना कि कवि पूरी तरह प्रगतिवादी हो गया है—काव्यप्रकृति को नकारना है. परन्तु यह भी न मानना कि कवि के भीतर एक बृहत् परिवर्तन की सच्ची आकांक्षा उत्पन्न हो गई है—उसके व्यक्तित्व की सच्चाई का अपमान है. प्रमाण में कवि सुमन का अगला समर्थ काव्य संकलन—'विश्वास बढ़ता ही गया' लिया जा सकता है. जो कि न केवल उसकी उपलब्धि है, वरन् सम्पूर्ण प्रगतिशील साहित्य की निजी उपलब्धि है. इस स्तर पर जाकर कवि संवेदना की दृष्टि से भी प्रगतिशील हो गया है. इसलिए 'प्रलयसृजन' केवल उस संवेदना का घोषणा-पत्र है; उसकी क्रियान्विति नहीं, कदाचित् 'राहुल' जी ने भी आत्मीयतापूर्वक यही बात कही है—

> 'सुमन का दृष्टिकोण, परिवर्तन, प्रवाह, मृत्यु के बाद जन्म, आदि इस बात की गारंटी है कि अगर तरुण कवि नित्य-स्थिर-अचल अतएव सनातन मृत में 'सत्यं शिवं सुंदरम्' के ढूँढने की कोशिश नहीं करेगा.'

अर्थात् यहाँ से कवि की एक स्पष्ट, तीखी काव्यधारा का पता चल जाता है, जिससे डिगने का सवाल ही पैदा नहीं होता.

एक स्पष्ट वैचारिकता के बावजूद 'प्रलय सृजन' सुपरिपक्व चिन्तन की कृति नहीं है. क्योंकि यहाँ मार्क्सादि का चिन्तन भारतीय सन्दर्भों में रूपायित न होने के कारण भारतीय संदर्भ मे सार्थक नहीं हुआ है. सीधे सीधे रूस के विचारों और

शैली को ग्रहण करना भारतीय भूमि के लिए न उचित था न आवश्यक, परन्तु प्राथमिक अवस्था अनुकरण की अवस्था होती है और विकास की अवस्था परि-मार्जन और विवेकी समन्वय की अवस्था होती है. 'प्रलय सृजन' और 'विश्वास बढ़ता ही गया' कवि की इन्हीं दोनों अवस्थाओं की प्रतीक कृतियाँ हैं. आगे जाकर सुमन ने भारतीय संस्कृति और स्वभाव के अनुरूप साम्यवादी दर्शन को एक प्रभावशाली काव्य-माध्यम प्रदान किया है. जिसकी चर्चा अगले पृष्ठों में की गई है.

खेद है कि सुमन के समानधर्मी कलाकार प्रायः इस गूढ़ता को न समझ कर असमय मे, सदा के लिए खो गए और अपने साथ साथ प्रगतिवाद की भी अंत्येष्टि कर गए. सतही अभिव्यक्ति और नीरस पुनरावृत्ति के कारण ही प्रगति युग इतनी जल्दी समाप्त नहीं हो गया; अपितु विदेशी भूमि पर पनपा. साम्यवाद का वृक्ष भारतीय संस्कारों और अन्तर्वाही चेतना से सिंचित न हो पाने के कारण एक पुरातत्वी नुमाइश मात्र बन कर रह गया.

> एक मोटी बात तो यह है कि तत्कालीन भारत में मजदूर किसान और पूँजीपति के बीच संघर्ष उत्पन्न करना, क्रान्ति का एक गौण पहलू था—जहाँ जाति के आधार पर वर्ग बने हैं. ब्राह्मण दरिद्र है—लेकिन सुपूजित है. हरिजन भी दरिद्र है, पर वह घृण्य है. पहले इन दो दरिद्रों को मिलाइए, फिर शक्तिसामन्तों (जमीदारों) और पूँजीपतियों से इनके संघर्ष को संगठित कीजिए. गाँधी के स्वर में इसीलिए पहले हरिजन के उत्थान, उन्हे मन्दिर प्रवेश कराने आदि का मौलिक, बुनियादी आह्वान था. इस सूत्र को प्रगतिवाद ने कहीं नहीं पकड़ा. दूसरे, वे सदा 'बाला के केश जाल' से मुक्त होकर जनता की ओर देखने की बात करते रहे. पर उन्होंने उस नारी के शोषित पक्ष को तरजीह नहीं दी, जो कदाचित् मजलूमों और मजदूरों से भी गई बीती हालत में थी; जो मन्दिरों में देवदासी, धन्ना सेठों के यहाँ वेश्या और घर घर मे दासी की तरह घुट रही थी. तीसरे, उन्होंने विदेशी साम्राज्यवादियों के खिलाफ जिहाद तेज नहीं किया और गलती से समझते रहे कि पूँजीपति = अंग्रेज शासक, याने कि प्रगतिवाद देश के मर्म को नहीं छू पाया. वह घाव के इर्द गिर्द मरहम पट्टी करता रहा.

परन्तु सतत प्रवाही कवि सुमन ने 'प्रलयसृजन' के पश्चात् अपनी सामा-जिक चेतना का संस्कार किया है और समस्याओं को सही सन्दर्भ देने की कोशिश की है. यदि सुमन प्रलयसृजन के स्तर पर ही रुक जाते तो उनके प्रति यह निराशा कभी भी इतिहास की वस्तु नहीं बनती.

लेकिन इस पूरे वक्तव्य से यह नहीं समझ लेना चाहिए कि 'प्रलय सृजन' काव्यात्मकता की दृष्टि से रहित संग्रह है. इसकी कतिपय कविताएँ काव्यमय प्रभाव की दृष्टि से सुन्दर हैं. यथा—'तूफानों की ओर घुमा दो नाविक निज पतवार,' 'गुनिया का यौवन,' 'अपने कवि से,' 'कलकत्ते का अकाल,' 'चली जा रही बढ़ी लाल सेना,' 'आज सजनि सावन के बादल बरस पड़े,' 'अपने मन से' (२), और 'मास्को अब भी दूर है.'

सुमन आरम्भ से ही आपत्तियों और संकटों से लड़नेवाले वीर सिपाही रहे हैं. उनके विगत दो संकलनों मे बराबर संकटों की चुनौती स्वीकार करनेवाला प्रबल स्वर सुनाई पड़ता है. लेकिन 'तूफानों की ओर घुमा दो नाविक निज पतवार' इस प्रवृत्ति की सर्वश्रेष्ठ कविता है. संघर्षशील व्यक्तित्व की उमंग, आत्म-विश्वास और दृढ़ता यहाँ अपने पूरे सन्दर्भो में सार्थक हुई है—

'आज सिंधु ने विष उगला है
लहरों का यौवन मचला है,
आज हृदय में और सिंधु में
साथ उठा है ज्वार.'

दुर्धर्ष परिस्थिति एवं अवरोधों की सघनता की तुलना में सामान्य जन-शक्ति को 'लहरें' कहा गया है, लेकिन मनुष्य का जोश और आवेश भी इन विषम परिस्थितियों के ज्वार से लड़ने को उद्यत है. कविता अपेक्षित प्रभाव और मनो-बल उत्पन्न करती है.

'गुनिया का यौवन' अपनी सजीव अनुभूति और 'कन्ट्रास्ट' के कारण एक गहरा प्रभाव छोड़ती है. केवल नारी को या कोमलांगी नारी के व्यक्तित्व-विपर्यय को ही संवेदना के औजार के रूप में इस्तेमाल न करते हुए कवि ने वैयक्तिक अनुभूति की अभिव्यक्ति, सम्पूर्ण भाषा-साधनों से करके प्रसंग को अधिक विश्वस-नीय बना दिया है—

'अच्छा तौ मल्किौ रह्यो' कहा
उसने मैंने फिर कर देखा.......'
'हाँ अच्छा हूँ, तुम नीकी तना रह्य्'
मैं भूला—सा बोला।'

इस कविता में कई अन्तरंग शब्द हैं; जिससे प्रसंग की अन्तरंगता के साथ पाठक का तादात्म्य सहज ही हो जाता है और वह स्रष्टा का अनुगमन करता है.

फिर इसमें कवि ने स्वयं को सामन्तवादी समाज का प्रतीक और 'गुनिया' को समस्त शोषितों की प्रतिमूर्ति बनाकर उस विरोध को 'सेल्फ ऑपरेशन' के द्वारा अधिक चमत्कारी बना दिया है—

'मुझ में तो अब भी यौवन है
अब भी अंगों में एक पुलक
अब भी अधरों में अरुणाई
अब भी पुतली में एक चमक.'

❀ ❀ ❀

'पर यह गुनिया समवयस हुई
दो ही दिन में इतनो जर्जर
किसने इस हरे भरे उपवन को,
आह बना डाला ऊसर।'

इस सम्पूर्ण त्रासदी की वह चरमइति है. जहाँ उस शोषिता के साथ संभोग की स्मृतियों का चित्रण किया गया है; उस क्षणिक सम्मिलित सुख के बाद जीवन की दो धाराओं में से एक गंगाजल बन जाती है, और दूसरी गटर. यही नियति है इन दो वर्गों की ! आखिर में जब वह कहती है—'चल दीन्ह्यो का ? मलिकौ जुहार।' तो प्रभाव विद्युत् के झटके की तरह एक चीरनेवाली लकीर खींच जाता है.

'कलकत्ते का अकाल' मे अखबार की खबरों से संवेदना जुटाकर (हाय, सुन रहे कलकत्ते मे, फैला घोर अकाल) मन के कंपनों (Vibrations) का चित्रण किया गया है. इन दिनों कवि—क्योंकि—एक ऐसे साहसिक और परिवेशीय संसार मे रह रहा था जहाँ एक ओर गंभीर करुणा और दूसरी ओर तीखी घृणा उसे परिचालित कर रही थी. इसलिए शीघ्र ही वह बंगाल के अकाल से अपने को जोड़ सका है, और अननुभूत चित्रण में भी जान आ गई है—

'पैदा होने से मरने तक
एक भूख की बात
कभी चैन से सोते ऐसी,
कहाँ एक थी रात.'

❀ ❀ ❀

'जिस गोदी में जीवन पाया,
पाया लाड़ दुलार
आज उसी में बिना कफन के,
सोये शिशु सुकुमार।'

इस कविता में पहली बार कवि ने शासन की आलोचना की है—

'हन्त, हमारे ही भाई थे,
दीन हीन लाचार
यों सड़कों पर सड़ते होती,
यदि अपनी सरकार?'

कई बार एक निश्चित विचारधारा सत्य के सर्वांगीण चित्रण के मार्ग में एक भयंकर व्यवधान बन जाती है, यह कविता इसका उदाहरण है. यदि सुमन एक विशेष वाद में नहीं घिरे होते तो यह कविता अनेक नये आयाम और गम्भीर सत्यों का उद्घाटन करती.

'चली आ रही बढ़ी लाल सेना', 'मास्को अब भी दूर है', 'स्तालिनग्रेड' आदि कविताएँ भी विशिष्ट समाज-दर्शन का समर्थन हैं. इन कविताओं में रूस की स्तुति है, लाल खून, लाल निशान आदि की वकालत की गई है. पर यह एक कवि का भावनाप्रवण एप्रोच है, राजनीति की कुटिल अभिसंधि नहीं. कवि के इरादे और उसकी नीयत स्पष्ट है. वह विषमता को मिटाना चाहता है. शोषण से उसे सख्त नफरत है. उसके लिए उसे अत्यन्त समर्थ आधार साम्यवाद में मिल जाता है. 'लाली' जो खून, क्रान्ति, शोषण और भयानक वीभत्सता आदि की प्रतीक है; उसे भीतर से अपील करती है, और वह उस दर्शन को भारत के लिये हितकर समझता है, इसलिए उसका पूर्ण समर्पित चारण बन जाता है. निहित स्वार्थों के कारण जो लोग कवि की उस निष्ठा या आस्था पर प्रश्नचिह्न खड़े करते हैं—वे यह भूल जाते हैं कि यह साम्राज्य हड़पने या हड़पवाने की साजिश नहीं है. शोषण से मुक्ति दिलाने के लिये सफल हुए संकल्पों का अनुवर्तन और स्तुति है. ये रचनाएँ उतनी ही राष्ट्रीय हैं, जितनी कि मैथिलीशरण गुप्त या और किसी भी कवि की. क्योंकि यह कवि के द्वारा उचित समझे गये मार्ग द्वारा राष्ट्रोद्धार के गान हैं. कवि की आकांक्षा का पता 'अपने कवि से' रचना मे लगता है. जिसमें उसने कहा कि अपने सुख-दुःख के लिए रोना स्वार्थ है. संसार में इतने गम बिखरे हैं जिनकी तुलना में उसका दुःख बिलकुल नगण्य है. उसने छायावादी, अन्तश्चेतनावादी आदि सभी कवियों पर कटाक्ष किये हैं. इस विषम समाज मे वृत्तियाँ कलाकार को केवल

त्रिशंकु बनाकर छोड़े दे रही है—जबकि सृजन धर्म उससे दूसरी ही अपेक्षाएँ रखता है—

> 'ऊपर पूँजीवादी समाज
> नीचे शोषित जनता का स्वर
> तुम आँखें ऊपर कर चलते
> मिट्टी जाती है खिसक इधर,
> इस तरह प्रतिक्रिया और क्रांति
> दोनों के बीच त्रिशंकु बने
> तुम बना मिटाया करते हो,
> अपनी आशाओं के खँडहर.'

यह कविता कवियों को सीधा, स्पष्ट क्रांति का मार्ग अपनाने की सलाह देती है. 'अपने मन से' मे भी कवि ने यही कहा है कि स्रष्टा दूसरों का दुःख बटोरे कि अपनी-अपनी ही गाता न रहे.

आज सजनि सावन के बदल बरस पड़े—लगता है कि यह शृंगारी कविता होगी, पर वस्तुतः यह गम्भीर संवेदनामयी कविता है—

> 'जीवनदाता कब से,
> तुम पर लगी हुई थीं जग की आँखे
> तुम बरसे भी खूब
> सरस आया
> जगती का कोना-कोना.'

यह उन कविताओ मे से है जो प्रगतिवादी धारणाओं को नवीन संदर्भ देती है. पदावली के लालित्य के साथ ही कोमल संवेदना गूँथ कर विलासियों की 'बरसात' को कवि ने प्रगतिवादी वर्षा बना दिया है.

संकलन मे ऐसी अनेक पंक्तियाँ है, जिनमें कवि की भावी सम्भावनाएँ छुपी है और जो कविता को छोड़ कर मन मे अटक जाती है.



विश्वास बढ़ता ही गया

'आसमान से टपकी चीज का भी बिना धरती के स्पर्श के कोई महत्व नहीं. बंजर धरती को उर्वर बनाने की चुनौती स्वीकारना ही सर्जक का सबसे बड़ा धर्म है.'

—सुमन

।। भूमिका से ।।

कवि का सही मूल्यांकन उसकी प्रतिनिधि रचना के आधार पर ही किया जा सकता है. शिवमंगल सिंह सुमन के प्रगतिवादी काव्य में 'विश्वास बढ़ता ही गया' निर्विवाद रूप से शीर्षस्थ रचना है.

सुमन की सामाजिक दृष्टि क्या है ? मौलिकता और प्रभाव का अनुपात कवि में कितना है ? परिस्थितियों में धँसने और पूरे संदर्भों को समझने का उसमें कितना माद्दा है ? अनुभूति के रूपायन की उसमें कितनी सामर्थ्य है ? और अन्ततः वह पूरी प्रगतिवादी काव्य-धारा में कहाँ स्थित है ? इन प्रश्नों का ठीक-ठीक उत्तर 'विश्वास बढ़ता ही गया' की कविताएँ दे सकती हैं.

तुलनात्मक दृष्टि से 'जीवन के गान' और 'प्रलयसृजन' को कवि बहुत पीछे छोड़ चुका है. जीवन की कडुवाहट और भौतिक विपण्णता अब उसकी संवेदना का अंग बन गई है. प्रोफेसरी की खोल को बेपर्वाह उतार कर वह अपने लोगों में घूमता-बैठता है. प्यार के अपव्ययी होने का आरोप इस सन्दर्भ में अर्थवान् हो गया है. यदि सतही और बेसुरी तर्ज न छेड़ना हो तो जीवन को निकट से, उसमें उतर कर देखना-समझना होता है. जो लोग व्यक्तिशः सुमन के उस काल के साक्षी हैं—वे जानते हैं कि उस समय सुमन जनवादी फॉर्म पर थे. इसीलिए इस कृति में पिछली रिक्तताएँ गहन संवेदना से भर गई हैं. अनुभूति को प्राणवान् बनाने के लिए कवि ने डूब कर पढ़ा है और भीतर उतर कर सोचा है. इसीलिए ये कविताएँ पिछली कविताओं की अपेक्षा भारतीय मन के अधिक निकट हैं. कवि

ने अपनी मूल समाजवादी अग्नि को सँवारा है; मूल प्रवाह को दिशा और गहराई दी है. फलतः वह अपने विशिष्ट आग्रह और स्थिति स्थापकता से उबर गया है.

सतही नारेबाजी और अपक्व वैचारिक आयात को बहुत हद तक अमान्य करते हुए, कवि ने मार्क्सीय वैज्ञानिक भौतिकवाद को भारतीय सांस्कृतिक आस्था में विनिमज्जित करने का प्रयत्न किया है. द्वन्द्व को आधार मान कर सृष्टि के उन्नयन और विकास की व्याख्या को उलट कर उन्नयन और विकास को मूलाधार मानकर द्वन्द्व की व्याख्या की गई है—

'सौ-सौ पतझारों के बल पर
सूख नहीं सकते मधु के कन.'

मधु के कण की जिजीविषा और जीवन के चिरन्तन स्वर को सौ-सौ पतझड़ों के आघात भी विनष्ट नही कर सकते, बल्कि वे उनकी क्षमता को ही व्यक्त करते है.

मनुष्य के भीतर निहित सामाजिक संचेतना को भारतीय दर्शन के 'एकोऽहम बहुस्याम' के आधार पर अभिव्यक्त किया गया है—

'मैं सबका हूँ, सब मेरे हैं
अनगिन अंग एक ही अंगी।'

कम से कम ये पंक्तियां सामाजिक जीवन के समन्वयात्मक दर्शन को ही सूचित करती है.

भारतीय नियतिवाद की तात्विक भाषा और भावना के सहारे क्रान्ति की व्याख्या करना निश्चित रूप से परिवर्तित दृष्टि का सूचक है—

'चिर अनादि चिर अनन्त की परम्परा
मेघ घिर रहे हैं क्योंकि उर्वरा धरा।'

इधर साम्यवादी लाली को जो क्रान्ति, रक्त और कदाचित् शोषण से मुक्ति का प्रतीक है कवि ने सृजन-धर्म की प्रतीक बना दिया है—

'नव सृजन शक्ति-सी लाल-लाल' (कोंपले)

तात्पर्य यह है कि विदेशी साम्यवाद को भारतीय समतावाद मे परिवर्तित करने और अपनी समस्याओं को निजी शैली और अर्थ देने का प्रयास 'विश्वास बढ़ता ही गया' मे हुआ है. इसका प्रमाण है सुमन की सबसे सशक्त कविता— 'जल रहे है दीप जलती है जवानी.' इस महान् कविता मे कवि ने राम के जन-

वादी स्वरूप का अत्यन्त तर्कसंगत उद्घाटन किया है. राम अपनी स्त्री के लिए रावण से नहीं लड़ते वल्कि वे 'धरा की आत्मजा' (जिसे हम स्वाधीनता कह सकते हैं) के अपहरण से क्रुद्ध और आविष्ट हो उठते हैं. जिस सम्राट् के आगे प्रकृति की शक्तियाँ वन्दी वनी खड़ी हों; जिसने जनता को चूस कर महल वनवाए हों, उसे जन-नायक राम वन्दर-भालुओं की सर्वहारा सेना के साथ पराजित करते हैं. दीवाली इसी जनता की विजय का उल्लास है. कवि ने आगे कहा है कि रावण-युग पुनरावृत हो गया है. धरती की वेटी वन्दी है, जनता वानर-भालू की तरह सर्वहारा है—अतः फिर से वही संगठित क्रान्ति अनिवार्य है, फिर से इस विषमता पर आक्रमण करना होगा. इसी तरह एक कविता में वह जनक्रान्ति को शंकर के तीसरे नेत्र की अग्नि कहता है. नीग्रो और जार के साथ रावण और अहिरावण का उल्लेख करना भी नहीं भूलता.

इस प्रकार भारतीय सांस्कृतिक सन्दर्भों में सद्यःजात साम्यवादी धारणा को अभिव्यक्त करने का सफल प्रयास करके कवि ने इस विचारधारा का ही भारतीयकरण कर दिया है.

पिछली प्रगतिशील रचनाओं में सुमन ने प्रायः वस्तुवादियों की तरह वर्ताव किया था, परन्तु इस कृति में उसने भारतीय प्रवृत्ति के अनुरूप भाववादिता का समावेश कर दिया है. इस समन्वय से वह एक तर्कसंगत परिणति पर पहुँचा है. पृथ्वी की गरिमा के निम्न उद्धरण से यह स्पष्ट है—

'रोई तो पल्लव-पल्लव पर
विखरे हिम के दाने,
विहँस उठी तो फूल खिले
अलि गाने लगे तराने.'

पृथ्वी भौतिकता का प्रतीक है. वह जीवनयापन के साधन जुटाती है, उसके प्रति यह एप्रोच भाववादी स्तर का है.

सुमन ने कभी यह नहीं चाहा कि आदमी को ऐसी आवर्जना और साँचे में ढाल दिया जाये. जिससे वह भोजन और शौच का यन्त्र मात्र वनकर रह जाये. उसने मनुष्य के मन की भूख को भी वरावर महत्व दिया है—

'....जीवन में अमर है भूख तन की, भूख मन की' इसीलिए वह युग (प्रगतिवादी) पंथी को मशीनी मानने से इन्कार करता है—

'तुम्हें समझते लोग मात्र लोहे का पुर्जा
भावशून्य भौतिकवादी पशु
नहीं जानते नहीं जानते
सिन्धु तुम्हारी छाती में आलोड़ित होता
चाँद तुम्हारी साँस-साँस की बाट जोहता....'

यह मनुष्य अज्ञेय जी द्वारा आरोपित 'पार्टी आर्गनाइझर' या 'कामरेड' या 'युयुत्सु किसान-मजदूर' मात्र नहीं है. यह न वायवीय, एकांतिक और विशिष्ट मनुष्य है. यह एक ऐसा व्यावहारिक मनुष्य है— जिसके पास मस्तिष्क, हृदय और हाथ तीनों हैं. वह अपना नियंता और नियामक है, अन्याय, शोपण और अनाचारों के प्रति उसके मन में विरोध की तीखी चेतना है. वह सामूहिक मनुष्य है.

'दुनिया भर के मजदूरों-मजलूमों एक हो जाओ' के नारे को ज्यों का त्यों उठा कर भारतीय जीवन पर भी चिपका देने की भूल को फिर से यहाँ कवि ने नहीं दोहराया है. इसके विपरीत उसने भारतीय जीवन में व्याप्त विसंगति को गहराई से समझ कर उसकी सतहों को उघाड़ने का समर्थ प्रयास किया है. इस देश की आध्यात्मिक विसंगति, रूढ़िवादिता, इतिहास के निष्क्रिय अभिमान, अनाचार, पराधीनता की सहिष्णुता, घोर दारिद्रय, बहुमुखी शोषण, विभाजित मनोवृत्ति आदि को निरावृत करने में ही उसका कवि और द्रष्टा मनोयोग पूर्वक जुटा है. उदाहरणार्थ—

धार्मिक विसंगति—

'ईश्वर ईश्वर में आज पड़ गया अन्तर
टुकड़ों-टुकड़ों में बँटा मनुजता का घर.
ली ओढ़ धर्म की खाल पर हृदय सूना
पूजन-अर्चन सब व्यर्थ देवता पत्थर.,

उल्लेख्य है कि कवि साम्यवाद के सिद्धांतों के अनुरूप धर्म को नकारनहीं रहा है—वह धर्म के ढोंग को बेनकाब कर रहा है. धर्म की संयोजकता को जब लोग विघटन का आधार बना देते हैं—तो सच्चे अधार्मिक तो वे हैं; न कि वे जो कि इस ढोंग को उघाड़ते हैं.

रूढ़िवाद का विरोध—

'तन जलता है, मन जलता है
जलता जन-घन-जीवन,
एक नहीं जलते सदियों से.
जकड़े गर्हित बन्धन.'

विभाजित मनोवृत्ति—

'एक अकड़ कर कहता
अपने मनवा हक ले लेंगे.
और दूसरा कहता,
तिल भर भूमि न बँटने देंगे.'

कवि ने यहाँ भारतीय जनता की दुहरी लड़ाई को भी समझा है. पहले वह केवल पूँजीपतियों के खिलाफ जनता को उकसाता था, पर अब उसकी दृष्टि में राष्ट्र का शत्रु नम्बर एक है—साम्राज्यवादी, फिर है पूँजीपति. इसलिए वह शोषण से मुक्ति के प्रसंग में मानसिक, राजनैतिक आदि सभी काराओं के विरुद्ध आवाज उठाने लगा है—

'आज विदेशी बहेलिये को
उपवन ने ललकारा.
कातर कंठ क्रौंचनी चीखी,
कहाँ गया हत्यारा ?'

उसने भाई-भाई के बीच चलनेवाली कटारों को बेवकूफी कहते हुए एक तीखा व्यंग्य किया—

'हँसते हैं सब देख गुलामों का यह ढंग निराला.'

और—

'कल स्वतन्त्रता के सैनिक
संकेत करेंगे
यही कहेंगे
जब नव जीव ज्योति जगी थी,
घर-घर भीषण आग लगी थी
आपस में लड़ते ही रह गये अभागे
सोते ही रह गए जिस समय जावा और सुमात्रा जागे

शोषण, विषमता और अत्याचार के तो अनेक चित्र कविताओं में हैं ही; उनके आयामों का वैविध्य भी उनमें है. इसलिए सुमन का यह कहना कि उसकी 'साँसों में समकालीन राष्ट्र की प्रत्येक धड़कन की प्रतिध्वनि हैं' सार्थक और सटीक है. सुमन उन कवियों में से हैं जिन्होंने प्रगतिवादिता का राष्ट्रीयता से एक औचित्यपूर्ण समन्वय किया है. सुमित्रानन्दन पन्त का समग्र प्रगतिवाद पर यह आरोप कि 'वह नवीन जन-भावना को अभिव्यक्ति न दे सकने के कारण कुछ तात्कालिक परिस्थितियों के कोरे राजनीतिक नारों को बार-बार दुहरा कर पिष्ट-पेषण करता रहा'—सुमन की इस रचना के लिए लागू नहीं होता.

यद्यपि ये 'एक खास दौर की कविताएँ हैं,' फिर भी इनके सन्दर्भ इतने व्यापक और प्रशस्त हैं कि इनमें मृण्मय तात्कालिकता नहीं है. नारेबाजी को कवि ने 'प्रलय-सृजन' के दौर में ही खत्म कर दिया है. 'नाविक-विद्रोह' के एक सामयिक प्रसंग को मनुष्य की पराधीनता, मुक्ति की तड़प और क्रान्ति से जोड़ कर सार्वदेशिक और सार्वकालिक बना दिया है. यथार्थ सदैव सामयिक होता है, परन्तु उसकी अभिव्यक्ति-सामर्थ्य और अन्तःसत्य का उद्घाटन उसे चिरन्तन बनाता है. 'विश्वास बढ़ता ही गया' के कवि ने इसे समझ लिया है.

ये रचनाएँ घोषणा-पत्र और औपचारिक सहानुभूति से इसलिए ऊपर उठी हुई हैं कि अब कवि केवल कर्तव्यविवश नहीं रहा है. वह भीतर से मथ गया है. ये पंक्तियाँ उसकी परम विह्वलता और आन्तरिक चीख को ठीक से व्यक्त करती हैं—

'इतनी व्यथा देख यदि
वाणी में कहने की शक्ति न पाता,
तो मैं आत्मघात कर लेता,
अथवा सूरदास बन जाता।'

प्रेमचन्द ने कहा है कि 'स्रष्टा को अपनी हर एक कृति के लिए जनता की अदालत में जवाब देना पड़ेगा.' मगर सिर्फ जवाब देने के आतङ्क या औपचारिकता से कोई लिखावट 'रचना' नहीं बन जाती. बल्कि सिर्फ इतना होता है कि व्यक्ति एक साँचावाद से निकल कर दूसरे साँचावाद में घुस जाए. जब तक भीतरी आवेग व्यक्ति को विवश नहीं कर देता, तब तक इस जवाबदेही का कोई साहित्यिक मूल्य नहीं है. (सुमन अपनी पिछली रचनाओं में स्वयं ही यह देख चुके हैं) लेकिन जब बाहर से कोई चीज अन्तर को चीरती चली जाती है; जब वस्तु-जगत् भाव-जगत् को बेध देता है—और एक अत्यन्त तीखी चीख कलाकार के जेहन से

निकलती है—वही सच्ची समाजोन्मुख कविता है. 'विश्वास बढ़ता ही गया' के कवि की यही मजबूरी है कि 'बिना लिखे उसकी छाती फट रही थी' इस व्यग्रता से जन्मी कोई भी कविता बिना कला के भी मन पर अंकित हो सकती है. सौजन्यवश जब कवि कहता है कि 'मैंने अपना हक अदा किया है' तो इसे उसकी स्वाभाविक नम्रता ही मानना चाहिए.

साम्यवाद के दो पहलू हैं—गरीबों और शोपितों के प्रति संवेदना, सहानुभूति या उन्हे भड़काना और दूसरी ओर पूँजीपतियों की भर्त्सना करना, उन्हे गर्हित करार देना और ललकारना. यह प्रवृत्ति कई बार कटुता और वीभत्सता को छू लेती है. नौसिखिए प्रगतिवादियों ने इसका इस्तेमाल—बिना भारतीय सन्दर्भो को समझे ज्यों का त्यों कर लिया है. सुमन ने भी अपनी उक्त अवस्था मे यही किया हैं. पर अब वे इस दृष्टि को सन्तुलित कर सकते हैं. उनका कहना है कि **मैं मूलतः संवेदनशील हूं, मेरे पैरों में 'पराया काँटा' तक खटकता है, परन्तु इस समय मुझे अपने स्वभाव के विरुद्ध 'रक्त का प्यासा' बनना पड़ रहा है**—'क्योंकि वहु जन हिताय' मुझे उन लोगों को चुनौती देनी ही पड़ेगी जिन्होंने आदमी के जीवन को जहरीला बना दिया है—

'आज जो मैं इस तरह आवेश में हूँ अनमना हूँ
यह न समझो मैं किसी के रक्त का प्यासा बना हूँ
सत्य कहता हूँ पराये पैर का काँटा कसकता.'

× × ×

'पर जिन्होंने स्वार्थवश जीवन विषाक्त बना दिया है
कोटि-कोटि बुभुक्षितों का कौर तलक छिना लिया है.'

× × ×

'यदि क्षमा कर दूँ उन्हें धिक्कार माँ की कोख मेरी.'

यह भारतीय दृष्टि है—राम वाली, कृष्ण वाली दृष्टि. इसमें जन्मतः घृणा और क्रूरता नहीं है. यह प्रतिरक्षा नीति है. विवश आग्रह है—

....'सदियों से चूस-चूस जिसने
कर दिया खोखला अंतर्मन
जीने की इच्छा व्यंग्य बनी
हो गए लुप्त जीवन-साधन !'

या कि जिसकी शोषण की भट्टी में युगों की आशाएँ जल गईं. माँ का दुलार और भाई का प्यार भस्म हो गया, चारों ओर भयानक जहर और आर्तनाद; घुटती साँसें और करुणा-विगलित पुकार फैल गई—ऐसी परिस्थिति मे 'छज्जे पर बैठकर सुख सपनों की बारात' तो नही देखी जा सकती. क्रान्ति का शस्त्र उठाना ही होगा—

'आर्तत्राणाय वः शस्त्रं न प्रहर्तु अनागसि' (कालिदास) कवि का दुधारा रक्षा के लिये उठा है—अन्धी हिंसा के लिये नहीं. इसलिए उसके समस्त स्वर विप्लव और सृजन, नाश और निर्माण से संपृक्त है. उसका सारा एप्रोच सकारात्मक है—

'नव-भवन निर्माण-हित मैं,
जर्जरित प्राचीनता का गढ़ ढहाना चाहता हूँ.'

उसके 'एक हाथ में सोम और अपर में हालाहल' है,[1] पर सोम को प्राथमिकता है. उसने साम्यवाद को साध्य की तरह नहीं, साधन की तरह प्रयुक्त किया है—उसका साध्य तो भारतीय संस्कृति का 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' ही है—

'अब स्वर्ग और धरती को,
मिलकर हो जाना है एक.'

स्वर्ग से उसे एतराज नहीं है—यदि वह धरती से मिलकर एक हो जाए. स्वर्ग यदि पूँजीपति है तो धरती जनता है. यह सौमनस्य है निषेधात्मक विघटन नहीं.

सुमन की क्रांति उसके वैयक्तिक प्रेम का प्रसार है. 'इन गीतों के लिये तुम्हारा ऋणी रहूँगा आजीवन' कविता में उसने प्रेयसी के प्रति आभार व्यक्त किया है, जिसने उसके मन में ऐसी प्रेम की आग जलाई है—जो सारे जीवन और संसार में फैल गई है—

'तुमने लपटों की उँगली से
मेरा स्नेह दीप जब बाला,
सहसा ज्योति जली अन्तर में
अन्धकार बन गया उजाला.'

फलतः वह अपने अभिशप्त युग की तड़प देख सका; उसे अभिव्यक्त करने को विकल

१. निराला के लिये कही गई इस उक्ति में कवि का अपना मंतव्य भी प्रकट होता है—लेखक.

हो उठा. मनुष्य का भला क्या उपयोग यदि वह अपने भीतर की आग को संसार का दीपक प्रज्ज्वलित करने के लिये उपयोग में न लाये तो ?—

'उपकृत हूँ, जितना जन-जीवन
ज्योति-दीप उकसाता जाता,
इससे बढ़कर हम दोनों का,
क्या उपयोग भला हो पाता ?'

कवि ने स्वीकारा है कि उसके सम्पूर्ण गीतों के मूल में उसी 'स्नेहमय लौ का कंपन' है. जिन गीतों का आरंभ प्रेम से हुआ हो वे कटुता, घृणा या वीभत्सता की ओर नहीं ले जा सकते. कवि का प्रगतिवादी स्वर संवेदनामय ही है न कि प्रतिक्रियात्मक—

'एक अंबुधि की व्यथा है,
एक अन्तर की कथा है
और कण कण की धरा है पर
एक अपनी भी व्यथा है
वेदना-कन चुन यहाँ कवि !'

सारे आक्रोश और तड़प के बाद अन्ततः चिरंतन आशावाद व्यक्ति को टूटने से बचा लेता है. इस शोषित आदमी के आशावाद से भारतीय सांस्कृतिक आशावाद का बहुत मेल है. इसके द्वारा वह भयावह अन्धेरे और निराश खाइयों को कल्पना तथा भाववादी आस्था से पाट देता है—

'मैं मनुष्य के भविष्य से नहीं निराश
मरु-प्रसार-सी हरी-भरी वसुंधरा
बीज-शेष किन्तु विश्व-वट नहीं उदास.'

यह आदर्शवाद का ऊँची उड़ान नहीं है. हारे-थके, घायल इन्सान की टूटन को सम्हालने और उसे प्रदीप्त रखने का उपचार है. यही आदर्शवादी आशा और प्रगतिवादी आशा में अन्तर है.

भारतीय मानस और उसकी प्रकृति को समझकर लाया गया कोई भी साम्यवाद विदेशी नहीं है. सिर्फ नाम से चौंकने की आवश्यकता नहीं है. क्योंकि कोई भी मनुष्य—यदि वह मनुष्य है—तो साम्यवाद को अस्वीकार नहीं कर सकता. आदमीयत की यह पहली शर्त है कि ईश्वर द्वारा निर्मित साम्य को मनुष्य अपनी कुटिलता और संकुचितता से विषमता में न बदले और न बदला जाना

सहे. जब कवि कहता है कि जीने का अधिकार सबसे बड़ी अहिंसा है, तो वह कोई गलत बात नहीं कहता. क्योंकि जो अहिंसा केवल निहिताशयों की रक्षा का साधन है—वह गर्हित है—इसमें कोई दो राय नहीं हो सकती.

कवि सुमन उग्र, अनास्थावादी और सतही कवि नहीं हैं. वे उन कवियों में से भी नहीं है जिन्हें प्रगतिवाद को दफनाने के लिए उत्तरदायी ठहराया जाता है.

सुमन के आशय और रचनाओं के बारे में जो कुछ भ्रम है वह केवल इसलिए है कि लोग उसकी आरम्भिक अपक्व कृतियों के आधार पर उनका मूल्यांकन करते हैं. पुष्प की गन्ध और सौन्दर्य का मूल्यांकन उसकी विकसित अवस्था के आधार पर ही होता है. इसलिए प्रगतिवादी सुमन 'विश्वास बढ़ता ही गया' के सुमन हैं. 'प्रगतिशीलता' और 'प्रगतिवादिता' जैसे फालतू भेदों की कोई तुक नहीं है. क्योंकि प्रगतिवादिता एक विशेष संवेदना वाली युगधारा है—जबकि प्रगतिशीलता किसी भी युग की गतिशील रचना के साथ चस्पा की जा सकती है. यहाँ मैंने दोनों को पर्यायवाची माना है.

पच्चीस कविताओं का यह संकलन प्रगतिवादी युग की एक उपलब्धि है. इसकी कुछ कविताएँ तो मूर्धन्य कोटि की हैं—जैसे 'जल रहे हैं दीप जलती है जवानी,' 'इन गीतों के लिए तुम्हारा ऋणी रहूँगा आजीवन', 'ग्रीष्म रात्रि का प्रभंजन', 'नई आग है', आज देश की मिट्टी बोल उठी है', 'मेरा देश जल रहा कोई नहीं बुझानेवाला,' 'युगान्तरकारी कवि निराला के प्रति', 'सहिष्णुता का सौहार्द्र' आदि. ये न केवल अपने कथ्य और वैचारिकता की दृष्टि से मूल्यवान हैं—अपितु कला और संवेदनात्मक ओज की दृष्टि से भी बहुमूल्य हैं. कविताओं में एक जीवन्त प्रवाह और हृदयस्पर्शिता है.



पर आँखें नहीं भरीं : पर आँखें भरीं भरीं

कवि सुमन की चवालीस कविताओं का संग्रह है—'पर आँखें नहीं भरीं'. पुस्तक दो भागों में विभाजित है. जिन्हें सुविधा के लिए क्रमशः पूर्व भाग एवं उत्तर भाग कहना समीचीन होगा. उत्तर भाग में महात्मा गांधी से सम्बद्ध छै कविताएँ संगृहीत हैं. पूर्व भाग की रचनाएँ इनसे विषय-वस्तु, रस आदि की दृष्टि से सर्वथा पृथक् हैं. अतः उत्तर भाग पर अलग से विचार करना उचित होगा.

बिना भूमिका के सीधे-सीधे कविताएँ आरम्भ हो जाती हैं. सुमन जैसे सहज कवि को व्यर्थ ही पाठकों के लिए किसी मध्यवर्ती व्याख्याता की आवश्यकता प्रतीत नहीं हुई—यह संगत है. 'आशीर्वचन' और 'सम्मति' भी उसे जरूरी नहीं जान पड़ी. क्योंकि उससे पाठक का इतना सीधा सम्पर्क है कि किसी प्रकार की अनुशंसा द्वारा वह उनके प्रति कोई अनास्था नहीं दिखाना चाहता; न कविता के लिए किसी बैसाखी को आवश्यक मानता है.

संग्रह की किसी कविता को पुस्तक का शीर्षक बना देने की परिपाटी प्रचलित है. अतः इसके आधार पर सहसा कोई तर्क खड़ा कर देने से किसी स्वस्थ निष्कर्ष पर पहुँच पाना सामान्यतया कठिन होता है. परन्तु यहाँ यह सप्रयोजन रखा गया लगता है. दोनों खंडों के शीर्षकों को जोड़ देने से मानवीय संवेदना के द्विविध पक्ष प्रकट होते हैं. 'आँखों का भर जाना' और 'आँखों का न भरना' अपने विरोध में दिन और रात्रि की भाँति समग्र जीवन-तत्व समाहित किए हैं. एक ओर करुणा का अनन्त सागर हिलोरें ले रहा है और दूसरी ओर सौन्दर्य और प्रेम की अतृप्ति का अछोर आकाश उसे क्षितिजीय सम्मोहन में बाँधने के असफल प्रयास में स्वयं विह्वल होकर झुक-झुक जाता है. कवि की विराट् चेतना इन शीर्षकों में द्रष्टव्य है.

केवल—'आँखें नहीं भरीं' इसी शीर्षक पर विचार करें तो भी इसके प्रतीक बड़े ही समर्थ प्रतीत होते हैं. यदि मोटे तौर पर पूर्व खंड की इन समस्त रचनाओं का विभाजन किया जाए तो इनके दो वर्ग हो सकते हैं. प्रथम प्रेम सम्बन्धिनी रच-

नाएँ; द्वितीय—इनसे इतर रचनाएँ. पहले वर्ग की रचनाएँ दूसरे वर्ग की रचनाओं से अधिक है. इनमें संयोग और वियोग के अनेक भावभीने चित्र गुथे पड़े हैं. सर्वत्र एक उत्कंठित पिपासा और उदासीन अतृप्ति बिखरी मिलेगी. कवि की आँखें ही नहीं उसका हृदय भी नही भरा है, क्योंकि 'आँखें' हृदय का ही तो मूर्तरूप है. अनुराग हृदय का मूल लक्षण है, जो अमर रूप-लिप्सा और अनंतप्यास में ही सुरक्षित रहता है. इसीलिए कवि ने लिखा है—

'कितनी बार तुम्हें देखा,
पर आँखें नहीं भरीं',

जैसे भोजन से पेट भर जाता है, वैसे ही यदि रूप से नयन 'अघा' जाते तो अनंत प्रेम का आधार ही नष्ट हो जाता. हृदय-फलक सौन्दर्य-मूर्ति के अंकन में हमेशा छोटा हो जाता है, विहारी ने उसे चितेरे की अक्षमता कहकर छुट्टी पाई है. कवि सुमन का कहना है—

'सीमित उर में चिर-असीम,
सौन्दर्य समा न सका'.

सच तो यह है कि हृदय की व्याप्ति सीमित नहीं है, परन्तु परिधि सौन्दर्य के सम्मुख वह असीमता भी सीमित हो जाती है. तब सौन्दर्य कितना असीम, कितना अनन्त और कितना विराट् है ! हृदय के प्रसार के साथ ही सौन्दर्य भी विस्तृत होता जाता है. 'वह' मधु की एक ऐसी बूँद है, जिसकी तृष्णा नहीं मरती. जो नहीं पीता वह तो प्यासा रहता ही है, पर जो पीता है उसकी प्यास का तो कोई ठिकाना ही नहीं. ऐसा ही प्यासा है यह कवि; जो न तो प्रेयसी के सौन्दर्य में तृप्त होता है, न प्रकृति के. इसीलिए 'चेरापूँजी' जैसे वर्षाबहुल स्थल से भी प्यासा ही लौटता है—

'पता नहीं मेरे मन की आशा कि दुराशा
लौट रहा हूँ चेरापूँजी से भी प्यासा'.

अतः हृदय की अतृप्त पिपासा ही इन कविताओं की मूल विशेषता है. हृदय क्या है ? विविध भावनाओं का रसभरा कोष ही न ! इसीलिए केन्द्रीय ध्वनि-ऐक्य होने पर भी आशा, आकांक्षा, असूया, उत्साह, उत्कंठा, उन्माद, त्रास, क्षोभ, दैन्य, निर्वेद, भ्रम, विश्वास, विषाद आदि भावोर्मियाँ यत्र-तत्र उभरी दिखाई देती है. हाँ कवि के आशावादी आग्रह के कारण निराशा, भय, वितृष्णा आदि को कहीं

भी स्थान नहीं मिल सका है. आत्म-विश्वास की एक गम्भीर छाया समस्त कविताओं पर छायी है.

संयोग की कविताएँ थोड़ी, किन्तु हृदयग्राही हैं. कहीं भी शारीरिकता उभरने नहीं पाई है. पार्थिवता को वह बराबर बचाकर चला है. 'विवशता' में कवि ने लिखा है—'तन न आया माँगने अभिसार, मन ही जुड़ गया था'. 'और... और' कविता में भी संभोग के वर्णन की अपेक्षा संयोग-काल में वाणी का अवरुद्ध होना, साज-शृंगार की व्यर्थता आदि का ही दिग्दर्शन हुआ है. कही अपनी विह्वलता का वर्णन किया गया है तो कहीं प्रेयसी से प्रेरणा लेने का संकेत है. तात्पर्य यह कि संयोग के चित्रण में भी उसकी लेखनी ने कहीं संयम नहीं छोड़ा है.

वियोग का आधार प्रेयसी का पूर्व सान्निध्य है, जो उसके जीवन में एक 'क्षणिक तूफान' की तरह आई और समस्त जीवन-सागर को अनन्त काल तक के लिए विक्षुब्ध करके चली गई. परन्तु उसका क्षणिक परिचय संयोग और वियोग की अथवा ग्रहण और उत्सर्ग की अक्षय निधि दे गया—

तुम क्या मिले कि अनजाने ही,
विरह-मिलन का ज्ञान मिल गया.
जिऊँ किसी के लिए या मिटूँ,
गौरव मिला, गुमान मिल गया'.

मानस की अवरुद्ध सरिताएँ फूट पड़ीं. प्रिय को पाने की आकांक्षा खोने का वरदान दे गई. प्रेम में तो सर्वस्व उत्सर्ग करने के लिए तत्पर रहना ही पड़ता है. कवि ने लिखा है—

'न जिसके आदि में है योग,
अथवा अन्त में बाकी'.

कबिरा भी लिख गए हैं—'राजा-परजा जेहि रुचे, देहि सीस ले जाय.' प्रेम के इस आदर्श का निर्वाह सर्वत्र हुआ है. वियोग के क्षणों में मधुर संयोग की स्मृति 'दिल को घायल' करने की ही सामग्री नहीं देती. बिस्तर पर पड़े-पड़े खटमल-मच्छर की हालत ही नहीं बनाती, संघर्ष और साधना की प्रेरणा देती है—

इस सतत संघर्ष-पथ पर बल तुम्हारा है'.

 

तथा—

'खैर यह मुस्कान बाँधे ले रहा हूँ मैं,
साधना की साध साधे ले रहा हूँ मैं'.

'स्मृति' साधना की साध है, जिससे अनेक साधनाएँ सम्भव हैं. यह साधना लोकोन्मुखी है; किसी तपस्वी की तरह हिमालय की कंदराओं मे मोक्षप्राप्ति के लिए की गई एकान्त तपश्चर्या नहीं है. 'छोड़कर नगरी तुम्हारी जा रहा हूँ' में कवि ने स्वीकार किया है—

'मैं 'उसी' मुस्कान की आभा चुराकर
दिग्-दिगंतों में लुटाने जा रहा हूँ'.

इस वियोग में सामंती संस्कृति की गंध नहीं है. यहाँ व्यक्ति सर्वोपरि नहीं बन सका है. अंत में कवि ने अपने व्यक्ति को समष्टि के प्रति बलिदान करने का 'आश्वासन' दिया है—

'युग शिशु को देकर जन्म—
गला घोटूँगा'.

यह प्रवृत्ति सर्वत्र दिखाई देती है. प्रेमी अपनी सम्पूर्ण शक्ति के साथ प्रबल प्रतिरोधों के बावजूद भी लक्ष्य की ओर जाने का प्रयत्न करता है, परन्तु सौन्दर्य और प्रेम का विवर्त्त उसे वहीं खींच लाता है. यह उसकी 'विवशता' है; वह 'उस' द्वार पर न जाना चाहे तो भी पथ मुड़ जाता है. 'तुम्हारे स्नेह की दो बूँद' में कवि ने लिखा है—

'हृदय मिल सोचते अहरह
न मिलते तो भला होता.
मगर मिलना न मिलना,
हाथ में होता तो क्या होता ?

अन्यत्र कवि ने लिखा है—

'वीन-मुग्ध बेसुध कुरंग
मन रोके नहीं रुका'.

परन्तु इस विवर्त्त से निकलने की जो छटपटाहट दिखाई देती है, वह शिव-संकल्प की साधना सी लगती है.

प्रेम-दर्शन और उसकी अभिव्यंजना की चर्चा के पश्चात्, अब संग्रह की नितान्त उल्लेखनीय रचनाओं की चर्चा भी कर ली जाए. 'कई बार टूटे जुड़े तार सारे,' अभिव्यक्तिकौशल की दृष्टि से संग्रह की निराली कविता है. स्मृति और उद्वेगमिश्रित उदासी की व्यंजना के लिए छन्द की योग्यता असंदिग्ध है—

'पपीहा है प्यासा
कि दिल का दिलासा
कि नादान मन का भरम धो रहा है,
कि पहिचान पन का मरम खो रहा है,
वहुत तो सहारे, वहुत तो सहा रे
न आँसू वहा रे'.

आंतरिक स्पर्श से सरस एक सूनी उदासी कविता की विशेषता है. यदि श्रेष्ठ गायक-गायिका का कंठ इस कविता को मिल जाए तो इसका निरालापन बहुत निखर सकता है.

अर्थव्यंजना (Onomatopoeia) की दृष्टि से वर्षा, वसन्त और पतझड़ के 'तीन-चित्र' महत्वपूर्ण हैं. कला की दृष्टि से वसन्त का चित्र सर्वश्रेष्ठ है. क्योंकि वर्षावर्णन मे जिस ओज, त्वरा और गर्जन की अपेक्षा है, पतझड़ चित्रण में जिस शुष्कता, वीरानी और उदासी के अनुकूल ध्वनिमय शब्दविधान की आवश्यकता है, वह आंशिक रूप से ही यहाँ उपलब्ध है. अर्थात् छन्द में सर्वत्र ध्वनि-निर्वाह नहीं हो सका हैं. परम्परा से प्रचलित रिमझिम-रिमझिम, या झर-झर-झर के आधार पर ही ध्वनि की सफलता स्वीकार करना सम्भव नहीं है. परन्तु मधुऋतु के वर्णन में प्रचलित ध्वनियों के फेर में न पड़कर कवि ने ऐसे शब्दों की सृष्टि की है, जिनसे वसन्त का उत्साह, हर्ष, पुलक आदि समुचित रूप से व्यक्त हो पाये हैं—

'अणु-अणु हर्षित, तृण-तृण मुखरित,
किसलय प्रमुदित, कलि-कलि कुसुमित.'

वसन्त के चित्र में भी ध्वनि-सादृश्य के लिए सरसर-सरसर के साथ मरमर-मरमर शब्दों का रखा जाना अनुचित है. जिस ऋतु में जीवन का वोध इतना प्रवल हो, उसमें 'मर' शब्द के प्रयोग की असंगतता स्वीकार करनी ही होगी. क्योंकि अर्थव्यंजना में शब्दों की ध्वनि के द्वारा ही अर्थ का वोध कराया जाता है. फिर भी आलंबन की दृष्टि से प्रकृति-चित्रण सम्बन्धी यह अकेली ध्वन्यात्मक कविता कतिपय न्यूनताओं के वावजूद भी प्रवल संभावनाएँ अंतर्हित किये हैं.

'पर आँखें नहीं भरीं' कवि की प्रिय रचना है. प्रेमीहृदय की विविध दशाओं के चित्रण में कवि यहाँ विशेष सजग है. सौन्दर्य-दर्शन से अतृप्त हृदय मे प्रेमांकुर फूटता है और प्रियतम के व्यक्तित्व में अहम् के साथ ही उसकी परिणति

होती है—इसी का भावात्मक निरूपण कविता में हुआ है. कहीं-कहीं अद्भुत सांकेतिकता मिलती है—

'मिलन साँझ की लाज सुनहरी—
ऊषा बन निखरी.'

'मिलन साँझ' में 'सुनहरी लाज' का उषा बनकर निखर आना—संयोगकालीन लज्जा का प्रेमी के लिये आनन्द के सुप्रभात होने का संकेत है, अथवा प्रेम के उज्ज्वल स्वरूप के साक्षात्कार के पूर्वभास का निदर्शन है. विविधार्थता निम्न पंक्तियों में द्रष्टव्य है—

'हाय ! गूँथने के ही क्रम में,
कलिका खिली, झरी !'

'गूँथने' के ही क्रम में कलिका का 'खिलना' और 'झरना' एक ओर स्थूल संभोग की व्यंजना करते हैं तो दूसरी ओर सूक्ष्म सौन्दर्य की. सौन्दर्य गूँथा नहीं जा सकता—बिखर-बिखर पड़ता है. इसके अतिरिक्त संयोग के परिमित क्षणों में ही वियोग का आक्रमण भी उक्त पंक्ति से ध्वनित होता है. शब्द-परिज्ञान की प्रतिभा यहाँ देखी जा सकती है—

'भर-भर हारी किन्तु रह गई,
रीति ही गगरी.'

'गगरी' शब्द लघुता का बोधक है, जो एक ओर आँखों के लिए आकार की दृष्टि से तो सटीक बैठता ही है, दूसरी ओर प्रकट करता है कि—छोटी-सी ही तो है, फिर भी भरती नहीं ! कहना नहीं होगा कि निरीह आकुलता की भोली अभिव्यक्ति यहाँ कितनी सामर्थ्यवान् बन पड़ी है ! पूर्वोद्धृत पंक्तियों में भी लाज के लिए 'सुनहरी' विशेषण कवि के इसी सामर्थ्य का परिचायक है.

डॉ॰ सुमन में भी उस राजरोग के लक्षण (Symptoms) यहाँ देखे जा सकते हैं, जो राष्ट्रकवि गुप्तजी को है. अर्थात् तुक के आग्रह के कारण शब्दों के हथौड़े से भावों की विकृति !—

कई बार दुर्बल मन पिछली—
कथा भूल बैठा.
हार, पुरानी विजय समझकर,
इतराया ऐंठा.

अन्दर ही अन्दर था लेकिन—
एक चोर पैंठा.

यहाँ बैठा, ऐंठा और पैंठा शब्दों पर ध्यान दीजिये. प्रेम और सौन्दर्य सम्बन्धी इस कविता में ये शब्द आँखों की किरकिरी हैं. वाक्यरचना में भी इस कविता में कवि ने अपने विशेषाधिकार (Poetic Licence) का प्रयोग बेधड़क होकर किया है.

'आज रात भर बरसे बादल'—गीत में सामाजिक शैली और शब्द-चित्रात्मकता के दर्शन होते हैं. रात भर बादल बरसने और खिड़की से 'झीनी-झीनी' बौछार आने से किसी निष्ठुर की याद ताजी हो जाना बड़ा ही स्वाभाविक है. कालिदास लिख गए हैं—

'मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्ति चेतः
कंठाश्लेषप्रणयिनि जने किं पुनर्दूरसंस्थे.'
(मेघदूत)

इसी स्वाभाविक वस्तुस्थिति का संकेत केवल दो पंक्तियों में देकर सारा प्रसंग स्फुट कर दिया गया है—

'मुखरित मूक अटारी शापित,
यक्ष हो उठे चंचल.'

सारी मेघदूत की 'वस्तु' यहाँ सिमट गई है. शापित शब्द अटारी और यक्ष दोनों के लिए है. विशेषण-विपर्यय के आधार पर अटारी इसलिए शापित है कि वहाँ एकाकिनी विह्वला यक्षिणी शापित है. क्योंकि शाप केवल यक्ष को नहीं मिला है. जहाँ दो के भाग्य सम्पृक्त हों वहाँ विधान असम्पृक्त कैसे रह सकता है ? अकेला 'शापित यक्ष' शब्द ही अर्थाभिव्यंजन के लिए पर्याप्त है, उसके सम्बन्ध में हमारे मन में एक परम्परागत विचित्र स्थायी भावना होने के कारण साधारणीकरण शीघ्र हो जाता है.

'दीप छिपाये चली समेटे निशा दिशा का आँचल'—पंक्ति में प्रकृति के मानवीकरण के साथ साकार चित्र उपस्थित करने की क्षमता है. इसे पढ़कर प्रसादजी की ये पंक्तियाँ बरबस याद आ जाती हैं—

'शशि मुख पर घूँघट डाले,
अंचल में दीप छिपाए

जीवन की गोधूली में,
कौतूहल-से तुम आए.'
(आँसू)

सम्भव है कि पूर्वोक्त पंक्ति लिखते समय डॉ० सुमन के अवचेतन में उक्त पंक्तियाँ रही हों. 'झीनी-बौछार' शब्द में मौलिक चित्रात्मकता है. 'शरद-सी तुम कर रही होगी कहीं शृंगार' कविता से उद्धृत निम्न पंक्तियों के साथ एक सुन्दर छाया-चित्र 'धर्मयुग' में निकला है—

'काँस-सी मेरी व्यथा बिखरी चतुर्दिक
बाढ़-सा उमड़ा हृदयगत प्यार'.

काव्य में बिम्ब उपस्थित करना कवि का मूलधर्म है. अलंकारादि इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए हैं. भारतीय काव्य शास्त्र में इसे विभाव के अन्तर्गत समझा जाता है और पश्चिम में इसका पृथक् नाम रखा गया है 'चित्रात्मकता' (Picturesqueness). बिम्ब (Image) इसका भी अन्तरंग है. जिस कवि के अन्तर मे अनुभूतियाँ जितनी गम्भीर और अभिव्यक्ति जितनी स्पष्ट और सशक्त होगी—उसी के अनुपात से उसके काव्य में बिम्ब उपस्थित करने की क्षमता भी होगी. कवि सुमन मे गहरी भावुकता और अभिव्यक्ति-पाण्डित्य है. उसके शब्द-चित्र इसके प्रमाण है.

'आज की साँझ सलोनी बड़ी मन भावनी री'—सवैया छंद मे लिखी गई इस कविता का प्रत्येक छंद पद्माकर, देव या रत्नाकर के किसी भी सवैये की कोटि में रखा जा सकता है. रीतिकालीन अभिव्यक्ति और तदनुसार परिवेश इसका आदर्श है. 'आगमिष्यत्पतिका' की उत्कंठा, हर्ष और उत्साहमयी उन्मद चेष्टाएँ अपनी सरस अभिव्यंजना के कारण मन-मोह लेती हैं. उद्दीपन के लिये प्रकृति के सुन्दर चित्र की मधुर पृष्ठभूमि है—

...'दूब की चादर फैली दिगंत लौं,
मोर को शोर मरोरे जिया'.

शृंगार के अनुकूल सानुप्रासिक शब्दावली मे प्रकट किया गया है कि—इधर मोर शोर कर रहा है और उधर नायिका का मन 'मरोर !' उत्सुक लज्जा का यही लक्षण है. प्रसादजी ने लिखा है—

'कुंचित अलकों सी घुंघराली
मन को मरोर बन कर जगती.'
(कामायनी-लज्जा)

नायिका के प्रियतम की आज 'आवनी' है. इसलिये उसे निशा कैसी लग रही है—

'आ रही, काजल आँजे निशा,
पुतली में घिरी घटा सावनी री.'

यहाँ रात्रि का मानवीकरण तो है ही, पर नायिका के आगत सौभाग्य की भी सुन्दर व्यंजना है. 'निशा का काजल आँजे आना'—मुग्धा की शृंगारमयी रजनी का आगमन है. 'पुतली में सावनी घटा घिरना'—भावी सरसता, माधुर्य और हर्ष गद्‌गद्‌ता का सूचक है.

इसी वेला में नायिका आली के साथ झूला झूल रही है. सावन में झूला झूलना लोक परम्परा है. संयोगकाल में अक्सर अमराइयों में प्रेमी युगल झूला करते हैं. अतः आली के साथ झूलने में वही स्मृति ताजी हो जाना मनोवैज्ञानिक सत्य है.

सब जानते हैं कि झूला जब उतार पर होता है, तब हृदय में एक मीठी-सी गुदगुदी होती है. जब संयोग की उत्कंठित स्मृति भी इस गुदगुदी से मिल जाये तब जैसा लगता है, वह कवि के शब्दों में 'हूक' है. इससे अधिक उपयुक्त शब्द नहीं खोजा जा सकता—

'आम की डाल पे झूले पड़े
चढ़ी पेंग, उतार में हूक उठे.'

इसी अवसर पर आली ने 'बाली' को लपेट लिया. बेचारी दयनीय विरोध करती हुई कारण बताती है—

'आली लपेट न आँचर में,
मोरे जानी-अजानी-सी कूक उठे'.

यह जानी-अजानी 'कूक' क्या है ? जानी हुई इसलिए है कि 'इसी' प्रकार की 'किसी' चेष्टा में वह उठी थी. क्यों उठी थी ? क्या अर्थ रखती थी ? बाला क्या जाने ? उसके सामने तो एक रंगीन चित्र है, रेखाएँ अनजानी हैं. छायावादी विरोधाभास यहाँ सफलता से प्रयुक्त हुआ है. 'कूक' शब्द रूढ़ा लक्षणा के माध्यम से समझने पर विशेष सार्थक लगता है.

इसी अवसर पर नटखट आली ने झूले को चक्कर दे दिया. इधर डोर ऐंठी और उधर नायिका का मन ! एक पुलक-विह्वल खिजलाहट-भरे अनुनय से उसने विरोध किया—

'डोर की ऐंठन मातौ करै मन,
मानरी मान मनावनो री'.

सई साँझ से लगी अनटूटी झड़ी के क्रम में मुग्धा को रात की याद आ गई. उद्दाम और परुष रति की कल्पना मात्र से तन्वंगी सिहर उठी. अज्ञात 'आशंका' ने कँपा दिया—

'आज की रात को राम ही मालिक,
लौनी लता पै गाज गिरी'.

रूपकातिशयोक्ति के माध्यम से सारा प्रसंग उद्‌भासित हो उठा है. परिणामतः पूर्वकल्पित रंगीन रात भयानक लगने लगी—

'छान को वान टपाटप चू रही,
बीजु की कौंध डरावनी री'.

भिन्नार्थक शब्दों से निकलने वाली ध्वनि कितनी तीक्ष्ण है ? यहाँ उन्मुक्त और निर्मम रति की सांकेतिक व्यंजना में कवि-कौशल प्रकट हुआ है. अनघड़ कवि इस प्रसंग को अश्लील बना देता है.

प्रिय की प्रतीक्षा मे देहली पर खड़ी-खड़ी नायिका भींज गई. बौछार की मार असह्य हो गई. मन मे अनेक बातें उठती है, पर कही नहीं जाती, सच है मन के पास वाणी होती तभी यह सम्भव था. बात आए मन में और कहे जीभ ! यह दुहरा तत्व-ज्ञान प्रेम के क्षेत्र से बाहर है. वाणी का क्षेत्र अत्यधिक सीमित है—'क्षण भर की पहिचान' में भी कवि ने लिखा है—

...'और बहुत सी बातें हैं,
भाषामें जिनके शब्द नहीं हैं'.

दीपक बालने की वेला आ गई. नायिका सखी से कहती है—आली ! मेरे सिंगार का ही दीपक जला दे न ! (दीप-शिखा-सी देह तो है ही) भाव यह है कि घर में उजाले की आवश्यकता नहीं है, अब तो प्रिय की आँख और मन को ही उजला करना है. विहारी कवि ने लिखा है—

'कहा कुसुम कह कौमुदी कितक आरसी जोति
जाकी उजराई लखें, आंख ऊजरी होति'.

कवि सुमन की भोली नायिका के पास इतना कौशल कहाँ, सीधे-सादे शब्दों में कह देती है—

'साज री साज सिंगार को दीपक,
आज पिया की है आवनो री'.

'साजरी-साज' और 'मान री मान' दोनों में ही 'वीप्सा' का प्रयोजन-वैभिन्य कला की दृष्टि से महत्वपूर्ण है. एक में त्वरा और उत्सुकता तथा दूसरे में खिजलाहट और झुँझलाहट इसी के माध्यम से व्यक्त हुई है.

भाषा में सई साँझ और हिया जैसे अनेक व्रजभाषा के शब्दों का सुन्दर प्रयोग हुआ है. तद्भव शब्दों की योजना—माधुर्य, सौकुमार्य और लोक-जीवन की अभिव्यक्ति के लिए की गई है. वस्तुतः इस कविता में लोक-गीतों का-सा माधुर्य है. स्वाभाविक, यथार्थ एवं मनोविज्ञान संमत भावाभिव्यंजन की दृष्टि से वियोग शृंगार की उत्कृष्ट कविताओं में इसकी गणना हो सकती है. कलात्मक दृष्टि से भारतीय और पाश्चात्य अलंकारों तथा प्राचीन और नवीन शैलियों का संतुलित समन्वय श्लाघ्य है. जादू वह जो सर पर चढ़कर बोले. जिस साँवनी साँझ को मेघ घिर आएँ, उस समय जिसने पढ़ी हो, उसे यह कविता याद न आजाए—यह सम्भव नहीं. सुमनजी की ऐसी कविताएँ ठीक उनके व्यक्तित्व की तरह खींचती, बाँधती, भिगोती और डुबोती हैं. इस कविता की विस्तृत व्याख्या इसीलिए की गई कि कवि की प्रतिभा के स्तर से परिचय हो जाय. ऐसी कविताओं में पूर्वोल्लेखित-कविताओं के अतिरिक्त 'शरद-सी तुम कर रही होगी कहीं शृंगार,' 'फागुन में सावन,' 'मरुस्थल और नदी,' 'मिट्टी की महिमा', 'कलाकार के प्रति,' साँसों का हिसाब' आदि आती हैं, परन्तु विस्तार भय से उन पर विहंगम दृष्टि से ही विचार किया जा सकता है.

'टूटी डोर' मुक्त छंद में लिखी गई संग्रह की इकलौती कविता है. प्रतीकों का उभार, चिह्नों की योग्यता एवं अभिव्यक्ति की नव्यता के कारण इसमें नई कविता के बीज हैं. मन की पतंग टूट कर उड़ जाती है और पहुँच के बाहर हो जाती है. हाथ में केवल झंझटों और समस्याओं की उलझी गुत्थी ही शेष रह जाती है. प्रखर वायु दुनिया की विषम परिस्थितियों की प्रतीक है. यह स्वार्थी संसार का चित्र यथार्थ है—

'डोर साधना कठिन, कठिन तर
दाँव फँसाना
पेंच काटना
धूल धूसरित, गहन नीलिमामय
संभ्रम आ - का - श में.'

सांग रूपक का निर्वाह श्रेष्ठ है. 'आकाश' शब्द के बीच डैशों के माध्यम से व्यापकता अभिव्यक्त की गई है. दाँव फँसाने और पेंच काटने में व्यस्त इतने बड़े संसार में एक असहाय मन की पतंग का कट कर भटकना कितना घातक है ? परिस्थिति का रूपकात्मक चित्र सटीक है.

'प्यार का सत्कार' उपालंभ कविता है. कुछ पंक्तियों में उपालंभमिश्रित असूया की व्यंजना बड़ी मर्मस्पर्शी है—

'उस दिन तुम मुझको हँस कर टाल रहे थे.
मैं प्यासा तुम औरों को ढाल रहे थे.'

एक शायर ने भी लिखा है—'हम बैठे रहे प्यासे, छलका किया पैमाना.' रसिक इन पंक्तियों के मन चाहे अर्थ निकाल सकते हैं. संयोग की 'स्मृति' वियोग की लम्बी घड़ियों को भी कितना संक्षिप्त बना देती है—

'उस दिन की दूरी कितनी पास रही है ?
अब सपनों पर मेरा विश्वास नहीं है.'

क्योंकि पार्थिव दूरी का क्या महत्व है, यदि मन ही दूर न हो जाए तो ! 'दूर हूँ जितना तुम्हारे पास उतना ही' कविता में भी इसी प्रकार की भावना है.

'मरुस्थल और नदी' प्रेम के स्वरूप की व्यंजना करनेवाली बहुत सुन्दर कविता है. दो विषम का संयोजन करनेवाली अद्भुत शक्ति ही प्रेम है—वही पुरुष को स्त्री से, कठोर को तरल से और मरुस्थल को नदी से मिलाती है. पुरुष और स्त्री की अपनी-अपनी क्षमताओं, आकांक्षाओं और स्वभाओं का काव्यमय निदर्शन भी यहाँ उपलब्ध है.

मरुस्थल पुरुष मात्र का प्रतीक है और नदी नारी की. दोनों में कितना वैषम्य है—

'मुझ में अंकित बेडोल पगों की कर्मठता
तुझ में शंकित मन की शफरी-सी चंचलता.'

पुरुष सहज-कर्मठ है और नारी तरल-चंचल. पुरुष सहज-मुक्त है, नारी तरल-बन्धन. पुरुष का अहम् उसकी जीत है—'मैंने ही गिरि को दी थी सागर की शर्तें.'

नारी सुलझन है और पुरुष उलझाव. नारी हृदय की गहराई है, पुरुष अधर की विडम्बित अतृप्ति—

'जो कुछ प्रवाह में सुलझ गया वह तेरा है.
जो कुछ बाहों में उलझ गया वह मेरा है.
जो कुछ अन्तर में भटक गया वह तेरा है.
जो कुछ अधरों में अटक गया वह मेरा है.'
मैं गीला हो जाता हूँ भोग नहीं पाता.

जयशंकर प्रसाद ने लिखा है—'पुरुष है—कुतूहल और प्रश्न; और स्त्री है विश्लेषण, उत्तर और सब बातों का समाधान. पुरुष के प्रत्येक प्रश्न का उत्तर देने के लिए वह प्रस्तुत है. उसके कुतूहल—उसके अभावों को परिपूर्ण करने का उष्ण प्रयत्न और शीतल उपचार !' इसीलिए शायद युगों-युगों से दोनों का नाता है. एक अभाव है, दूसरी भाव—

'मेरे सूखे अधरों में एक कहानी है,
मैं रीझ गया इसलिये कि तुझमें पानी है.'

और तारीफ यह कि फिर भी वह युग-युग से अतृप्त है. सच है—जिस दिन प्यास बुझ जाएगी. उस दिन मनुहारों का आधार ही ढह जायेगा. इसलिये न बुझी प्यास और न भरी आँखें ही बेहतर है.

दूसरे वर्ग की रचनाओं में 'कलाकार के प्रति' कविता निस्सन्देह सर्वश्रेष्ठ है. कवि की भावी काव्य-दिशा, दुर्दम साधनाकांक्षा, कला की परिभाषा और तद्गत यथार्थ यहाँ 'शुगर क्वोटेड कुनेन' की भाँति व्यक्त हुए हैं. कर्म की जो अदम्य भावना कवि के जीवन में दीख पड़ती है, उसको भूमिका के रूप में यह कविता चिरस्मरणीय रहेगी. वह यहाँ एक ऋषि की भाँति प्रौढ़ वयस् मे नवोदित कलापीढ़ी को कर्मण्यता का संदेश देता है—

'तुम क्या दिन भर पोथी-पत्रा पढ़ते हो ?
कैसे शिल्पी, हो मूर्ति नहीं गढ़ते हो ?'

स्मरण रहे कि उपदेशक की तरह यह संदेश अभिधात्मक नहीं है. वह व्यथासिक्त भर्त्सना के माध्यम से ध्वनित हुआ है. सम्भवत: कलाकार ने उपकरणों के अभाव का रोना रोया होगा. कवि उत्तेजित हो उठा—'क्या फूलों, पत्तों में रंग नहीं है ? चाँद सितारे, उषा-संध्या, चपला-चपला, बहार का मटमैला रंग, सोन जुही का फूल, चम्पा की महक ..सभी तो हैं ?' इतना ही नहीं. कला की, सामग्री यहाँ भी है—

'रूधे कंठों में भी हैं कवि के गाने।
रूखे अधरों में भी हैं छिपे तराने।
वह जो खेतों की मेड़ों पर सोया है।'...

यह ठीक है कि साधना अत्यन्त जटिल होती है--

'जलन की साधना संसार में सस्ती नहीं होती'

फिर कला की आराधना ? उसके लिए सौ-सौ साँचों में हाथ बिठाना होते हैं. सौ-सौ आँचों में जब व्यक्तित्व का स्वर्ण पिघलता है--तब कहीं मुश्किल से एक रेखा का भराव भरता है. समस्त जीवन की कठोर आराधना के पश्चात् एक जीवन-दर्शन बनता है--

'सारे जीवन में एक मूर्ति बनती है'.

ऐसी मूर्ति जो कलाकार के कर्म, ज्ञान और भाव का निचोड़ होती है. अनभिव्यक्त सत्य को मूर्तिमंत कर देनेवाली अनुपम रूपाकृति--

'युग के अरूप का रूप ढला जाती है.'

 

'जो युग-युग का इतिहास बना जाती है.'

 

'जिसमें सपनों के रंग निखर जाते हैं
कवि की छाती के दाग उभर आते हैं.'

काव्य की शक्ति विष को अमृत में बदल देती है. जड़ को चेतन और अरूप को रूपायित कर देती है--

'जो अरमानों का घूँघट पलट गई है'
'जो अँधियारे में डसकर उलट गई है'

सूर ने काली रात को नागिन और 'जुन्हैया' को उसका डसकर उलट जाना कहा है--कवि ने आधार में इस कल्पना को ग्रहण करते हुए भी उसका प्रयोग मौलिक रूप से किया है.

'साँसों का हिसाब'--एक बड़ी ही लोकप्रिय रचना है. लम्बी और प्रवाह पूर्ण ! इसमें कवि जन-जन से जीवन में उपयोग किए गए क्षणों और व्यर्थ जाने-वाले पल-पल का साधिकार लेखा-जोखा चाहता है; क्योंकि वह समाज का द्रष्टा ही नहीं नियामक भी है. वह भविष्य के लिए संदेश भी देता है--

'अब एक साँस भी व्यर्थ न जाने पाए'

जो हो चुका सो हो चुका उसके लिए अब क्या चिन्ता ? परन्तु हस्तामल-कवत् भविष्य का अवश्य उपयोग कर लेना चाहिए. ऐसा ही संदेश रवीन्द्र ने दिया था—'Mourning constantly in the day you have lost the sun. If that lamenting goes on through the whole night, you will even loose the stars'—लगता है कि यह कवि का आत्मनिरीक्षण है, जो पर्याप्त आराधना के पश्चात् सम्भव है. उक्त कविता में अप्रतिहत वेग और ओजस्वी भाषा है. परन्तु एक सौ आठ (पूरी माला !) पंक्तियों की कविता में भावों का गुंफन समुचित रूप में नहीं हो पाया, वे बिखरे हुए हैं. कला के परिष्कार की अपेक्षा पंक्तियों के विस्तार और कवि-सम्मेलन में उसकी उपयोगिता पर ही कवि का ध्यान अधिक रहा है. कवि अंतर्मुखी कम और बहिर्मुखी अधिक है. प्रगतिशील कवियों की यह सामान्य विशेषता भी है. सौभाग्य से डा० सुमन में अद्भुत मंचीय प्रतिभा भी है, अतः श्रोताओं की भूख का भी ख्याल करना पड़ता है. इसलिए कवि सम्मेलन की लोकप्रिय कविताओं में कला की दृष्टि से दोष उत्पन्न होना स्वाभाविक है. ऐसी कविताओं के लिए कवि की यह युक्ति सटीक बैठती है—'मेरे गीतों को चलते-चलते गाओ.'

एक उदाहरण लीजिए—

'क्या तुम इन साँसों में कुछ रह पाए हो ?
क्या तुम इन साँसों से कुछ कह पाए हो ?
क्या तुम इन साँसों के स्वर में बह पाए हो ?
क्या इनके बल पर सब कुछ सह पाए हो ?

उक्त पंक्तियों में खोखलापन स्पष्ट है. केवल रह, कह, बह और सह के अनुरूप वाक्य-विन्यास हैं. न तो कोई कलात्मकता है और न भावात्मकता ही. मंचीय कवियों की यही तकलीफ है, परन्तु ऐसी कविता में भी जहाँ 'कवि' सजग हुआ है—'कला' निखर उठी है—

कितनी, साँसों की अलकें धूल सनी हैं ?
कितनी साँसों की पलकें फूल बनी हैं ?

साँसों की 'अलकों का धूल में सनना'—परिश्रम करना और 'पलकों का फूल बनना' दूसरों के मार्ग को मंगलमय बनाना है. ऐसे अनेक लाक्षणिक प्रयोग समस्त पुस्तक में हैं. 'फागुन में सावन' में भी एक सुन्दर प्रयोग है—

'सुबह उड़ी थी धूल,
शाम को घिर आए बादल'

धूल से उदासी लक्षित होती है और बादल से आँसू ! ऐसे स्थानों पर उच्च कोटि की कला के दर्शन होते हैं. साँसों की शक्ति और उसकी पौराणिकों, आगन्तुकों आदि में प्रतिक्रिया बड़ी ही मनोवैज्ञानिक है—

'पौराणिक कहते दुर्गा मचल रही है.
आगंतुक कहते दुनिया बदल रही है.'

एक ही क्रिया की विभिन्न प्रतिक्रियाओं का मनोरम दिग्दर्शन है. साँसों के माध्यम से सारे जीवन की विशद व्याख्या की गई है.

'मिट्टी की महिमा' में मिट्टी के प्रति मिट्टी के कवि का तीव्र अनुराग व्यंजित होता है. मिट्टी अपनी अकिंचनता मे भी कितना विराट् स्वरूप गर्भित किये है. वह वज्र से कठोर और कुसुम से कोमल है. छंद की दो पंक्तियों में तो मिट्टी के अकिंचन रूप और दो में विराट्, विशाल और शक्तिमान स्वरूप की अभिव्यक्ति बड़ी ही कलात्मक और भावपूर्ण है......

'रो दे तो पतझर आ जाए, हँस दे तो मधुऋतु छा जाए
झूमे तो नंदन झूम उठे, थिरके तो तांडव शर्माए
यों तो बच्चों की गुड़िया-सी भोली मिट्टी की हस्ती क्या ?
आँधी आए तो उड़ जाए, पानी बरसे तो गल जाए.'

अन्त मे कहा गया है कि जब से मिट्टी के मानव को 'वाणी' का वरदान मिला तब से उस पर स्वर्ग और अपवर्ग न्योछावर हो गये—यह साहित्यकार की महत् शक्ति का खुला शंखनाद है, और यह गरिमा है जिसके कारण कालिदास के लिए कहा जाता है कि उसने धरा को स्वर्ग बना दिया.

'चेरापूँजी' का स्थान-चित्र हार्दिकता के संयोग से खूब निखरा है. काव्यत्व की दृष्टि से भी कविता सुन्दर है. 'अचल हृदय की गहराई-सी सुरमा घाटी' में अमूर्त उपमानों के द्वारा मूर्त वस्तु में जीवन आ गया है. संग्रह की यह अन्यतम रचना है.

सामान्य कवि के संग्रह मे भी एकाध श्रेष्ठ कोटि की कविता देखी जाती है और श्रेष्ठ कवि के संग्रह मे भी कुछ महज भर्ती की लचर कविताएँ पढ़ने को मिलती हैं. डॉ० सुमन का यह संग्रह इसका अपवाद कैसे हो सकता है ? परन्तु आधिक्य के आधार पर साहित्य में निर्णय होता है, इस संग्रह मे सुंदर कविताओं का

वाहुल्य है, इस दृष्टि से सुमन एक श्रेष्ठ कवि सिद्ध होते हैं. यदि कर्म-मार्ग कवि सुमन का ध्यान न वटा लेता तो उसमें निहित महाकवियों के वीज फलित हो सकते थे.

'श्रौर.. श्रौर,' 'मैं चलता जा रहा,' 'चाँदनी छाई,' 'वात की वात' जैसी कुछ कविताश्रो को छोड़कर शेप सुन्दर श्रौर हृदयग्राही हैं श्रौर कुछ तो सुपमामयी हैं.

जो भर्ती की कविताएँ गिनाई गयी हैं—वे सामान्य कवि के संग्रह की श्रेष्ठ कविताएँ हो सकती थीं; परन्तु हमें यह नहीं भूलना है कि यह संग्रह डॉ० सुमन का प्रौढ़वय-प्रकाशित संग्रह है. इस दृष्टि से 'विवशता' जैसी कुछ कविताएँ भी उनकी ऊँचाई के श्रनुरूप नहीं हैं, जिनमे काव्य दो चार पंक्तियों से श्रागे नहीं वढ़ता. श्रभिधा में उपदेश देना भी कवि का लक्ष्य नहीं होता; श्रतः ऐसी पंक्तियों को कविता नहीं कहा जा सकता—

'जो अपने को ही दे डाले,
वह ही सच्चा दानी है.
जो अनवोली रह जाती है,
वह ही सच्ची वाणी है.'

'तोड़ते हो क्यों भला, जर्जर रूई का जीर्ण धागा' जैसी पंक्तियों में भाषा की ऊँचाई भी नहीं रह पाई है.

फिर भी दोष सामान्य श्रौर उपेक्षणीय हैं. सुमन की रचनाएँ प्रयत्न-साध्य नहीं, भाव-प्रेरित हैं. उसमें प्रतिभा है; भाषा को पच्चीकारी का पाण्डित्य है, कला की परख है, कल्पना का वैभव है और सवसे वड़ी वात उसमें मानव के प्रति एक व्यापक सहानुभूति और कर्मण्यता की अदम्य वासना है. इसलिये वह धरती को प्यार कर सका है. उसका श्रन्तिम श्राश्वासन पूजा की धूप-सा सुगन्धित श्रौर पवित्र है—

जिसने जन-ज्वाला का आभास दिया है
दुर्धर संघर्षों में विश्वास दिया है
जर्जर जगती को नव-विश्वास दिया है,
उसके हित मेरी प्रतिभा पूर्ण प्रखर हो.
× × ×
पद दलितों का पावन संकल्प अमर हो.

(सन् १९६३)



पर आँखें भरीं-भरीं

'पर आँखें नहीं भरीं' के इस उप-विभाग मे महात्मा गांधी पर लिखी छै कविताएँ संकलित हैं. इन्हें आचार्य नरेन्द्रदेव ने गांधी के प्रति हिन्दी की श्रेष्ठ श्रद्धांजलि कहा था. कविताएँ वस्तुतः प्रवाह और आवेशमयी कलात्मक अभिव्यक्तियाँ हैं—

'विश्वास बढ़ता ही गया' में सुमन ने कहा था—

'कौन कह रहा हमको हिंसक
आपत् धर्म हमारा,
भूखों नंगों को न सिखाओ
शान्ति शान्ति का नारा.
कायर की सी मौत जगत् में
सबसे गर्हित हिंसा
जीने का अधिकार जगत् में
सबसे बड़ी अहिंसा.'
(पृ० ४५)

यह कविता नाविक विद्रोह से प्रभावित होकर १९४६ में लिखी गई थी. अप्रैल १९४७ में हिन्दू मुस्लिम दंगों की वर्वर रक्तस्नात विभीषिका से व्यग्र होकर सुमन ने लिखा कि—'मेरा देश जल रहा, कोई नहीं बुझानेवाला.' इस पूरी कविता में गांधी या नेहरू का उल्लेख तक नहीं है. इसके विपरीत कवि को लगा कि—

भगत सिंह, अशफाक,
लालमोहन, गणेश बलिदानी
सोच रहे होंगे हम सबकी,
व्यर्थ गई कुरबानी !
(विश्वास बढ़ता ही गया, पृ० ५४)

लेकिन १९४७ के अगस्त मे सहसा मार्क्सीय दर्शन और सशस्त्र क्रांति से प्रभावित विप्लवी कवि नोआखाली की वर्वर रक्तपिपासु भीड़ मे अकेले धँस जानेवाले गांधी के व्यक्तित्व से अभिभूत हो उठा है—

'डगमग-डगमग, अहि कोल कमठ
नप गए तुम्हारे तीन डगों में नभ-जल-थल

नयनों में आत्म प्रकाश प्रबल
जल गया निशा का अहंकार,
तम तार तार.'

सुमन की दृष्टि मे गांधी नीलकठ, अक्षय वट, युग सारथी, भगीरथ, दधीचि, ऋत्विज और सर्वहारा के संवल बन गए. अपनी ही लकीर से हट कर सुमन ने एक पावरफुल कविता लिखी. गांधी का व्यक्तित्व कविमानस पर छा गया और तभी गांधी की हत्या कर दी गई ! वह आहत हो गया—

'खो गई ज्योति जीवनदाई
विधवा-सी विह्वल पड़ी मही,
लग रहा आज, जैसे,
अब दुनिया रहने के लायक नहीं रही.'

'महा प्रयाण' आघातों का महाकाव्य है. विह्वलता, आहत-आर्तनाद के साथ-साथ सुमन का आक्रोश अहिंसा की हत्या पर बरस पड़ा—

'कालीदह के कालियानाग को हम नाथेंगे, कुचलेंगे
जहरीले दाँत उखाड़ सिन्धु की लहरों में लय कर देंगे
हम अनाचार-हिंसा बर्बरता से कर देंगे मुक्त मही
कहने-सुनने को भी न मिलेंगे आस्तीन के साँप कहीं।'

यहाँ कवि का स्वभावगत आक्रोश ज्यों का त्यों है, पर उसकी तोप का मुँह दूसरी ओर घूम गया है, वैसे यह अहिंसक गाँधी के प्रति शोक व्यक्त करने की विचित्र पद्धति है, लेकिन कवि के मूल आवेश से इसका साम्य है.

गाँधी की हत्या को कवि ने राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय सन्दर्भों मे देखा है. यह देश-जाति से मुक्त समाजवादी दर्शन की पुनर्रचना है—

तुम कहाँ आज !
हे राम, मुहम्मद, कृष्ण, बुद्ध, ईसा मेरे !

यहाँ राम के साथ मुहम्मद और ईसा भी है. दूसरी ओर कृष्ण और बुद्ध की जोड़ी भी पर्याप्त चमत्कृत करती है. यह कवि सुमन मे निहित सतही विरोधाभासों की समन्विति की अवचेतन प्रक्रिया के साथ ही पूरे सांस्कृतिक सन्दर्भों को एकत्र रखने की आकांक्षा है.

गांधी पर लिखी गई ये कविताएँ कलात्मक दृष्टि से भी ऊँचा स्थान रखती है. कवि की जनवादी चेतना ने पौराणिक सन्दर्भों को गांधी के कर्म मे नई सार्थ-

कता देने का सफल प्रयास किया है. यह एक तरह से गांधी के ही प्रयासों को काव्य-भूमि देने के तुल्य है—

'पलकें खोलीं
खुल गए प्रभा के स्वर्ण-कमल
हिल उठे अधर,
मच गई दानवों में हलचल,
डोली सत्ता, सिंहासन थर थर भू लुण्ठित
चरणों पर स्वर्ण-किरीट मुकुट।'

गांधी के उद्भव से भारत की सुप्त चेतना अपने सम्पूर्ण इतिहास और भूगोल में सजीव हो गई थी. परम्परा के 'परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्' के भूले सूत्र पुनः हाथ आने लगे थे. कवि ने गांधी के स्तवन के रूप में सांस्कृतिक चारण की भूमिका का निर्वाह किया है. इस माने में वह 'जन कवि' ही नहीं 'राष्ट्र कवि' भी हैं; क्योंकि उसने युग के जीवन को अपने सम्पूर्ण चेतना-वाही सन्दर्भों में देखा है.



'पर आँखें नहीं भरी' में सुमन की दो मूल धाराओं, प्रेम-रोमांस और प्रगतिवादी संवेदना में से मुख्यतः प्रथम धारा की अभिव्यक्ति हुई है. एक जैसी अभिव्यक्ति की ऊब ने सुमन को दूसरी धारा की ओर प्रवृत्त किया था. परन्तु इसके पश्चात् शीघ्र ही कवि की समाजवादी और लोक-मंगल की धारा को गांधी के विराट व्यक्तित्व में आश्रय मिला. यह सुमन की दृष्टि के विकास और उदात्तीकरण का सूचक है.

गांधी पर लिखी कविताएँ सुमन के सहजबोध की प्रतीक हैं. पीड़ितों की राहत के जो मार्ग हैं वस्तुतः कवि उनका गायक है—न कि किसी धारा या वाद से प्रतिबद्ध. इसलिए जड़ता और स्थिरता के उपासक ही जीवन की इस ऊर्ध्वमुखी चेतना के सन्धान पर प्रश्न-चिह्न लगा सकते हैं. मुख्य वस्तु न वाद है न कटघरे—मुख्य है मनुष्य की नीयत (Intention). वह अपनी चरितार्थता के लिए सदैव 'शब्दों-शब्दों में सत्य-शोध' करती रहती है. अपना ही विश्लेषण और पुनर्परीक्षण करती है. यही जीवन के नए कल्याण मार्गों के सन्धान का रहस्य है.

'पर आँखें भरी-भरी' की छै कविताएँ सुमन की इसी विकलता को सूचित करती है. आँखों की अतृप्ति को संवेदना की तरलता से या व्यक्ति-सौन्दर्य की प्यास को करुणा-धारा मे विनिमज्जित करके यह धारा जीवन के सारे आकाश में छहर गई है.



विंध्य-हिमालय

(डॉ० सुमन के नए काव्य-आयाम)

विंध्य-हिमालय के पूर्व का डा० सुमन का सम्पूर्ण प्रगतिवादी काव्य मुख्यतः काव्यानुभूति द्वारा प्रणीत है. यह ठीक है कि स्वानुभूति का बहुत-सा अभाव कवि की व्यापक संवेदना भर देती है—जैसा कि सुमन के कवि के साथ भी हुआ है— परन्तु स्वानुभूति के बिना काव्य में अतलस्पर्शिता नहीं आती. इसीलिए प्रगतिवादिता के एक सार्थवाह होने पर भी वे पूरी तरह यथार्थदर्शी नहीं हो सके. आखिर अनुभूति का अभाव सहानुभूति किसी हद तक ही भर सकता है. भीतर से चुभने, काटने और चीरनेवाला दर्द सुमन की प्रगतिवादिता के किनारे से निकल गया है. ऐसी रचनाएँ मुख्यतः उनके मन:प्रसार को सूचित करती हैं, आत्म-पीड़न को नहीं। वे उसी सहानुभूति के सहारे प्रगतिवाद से बँधे हैं, जिसके सहारे छायावादी कवि 'अर्धक्षुधित, शोपित निरस्त्र जन' (पंत) या 'चिर वंचित भूखों' (प्रसाद) के प्रति अपनी रुचि दिखा दिया करते थे. परन्तु कवि सुमन उनकी अपेक्षा जनक्रांति, और शोषित मानवता की मुक्ति के प्रति अधिक प्रतिबद्ध हैं. इस दृष्टि से वे प्रगतिवादिता के अधिक पास हैं.

'विंध्य-हिमालय' में नए सुमन का जन्म हुआ है. कवि ने अपने सारे आग्रहों को त्याग दिया है. वह केवल अपनी आत्माभिव्यक्ति या भोगे हुए क्षणों को व्यक्त करने को विकल है. अतः सामान्यतः समझी जानेवाली प्रगतिवादिता इस कृति में नाम-शेष रह गई है. हाँ, आत्म-विश्वास, आस्था और उत्साह के स्वर यहाँ भी सुरक्षित हैं.

विंध्य-हिमालय के दो खंड हैं. पहला 'विंध्य' और दूसरा 'हिमालय.' विंध्य खंड में मध्यप्रदेश में लिखी गई कविताएँ हैं और हिमालय खंड में नैपाल में लिखी गई कविताएँ. परन्तु सम्पूर्ण संग्रह का मुख्य स्वर विदा और प्रवास का स्वर है. प्रवासी की अपने विगत सम्पर्कों से जैसी मोहमाया और नवीन जीवन के प्रति जो स्वागत भाव रहते हैं, वे दोनों विंध्य-हिमालय में झलक रहे हैं.

कवि भीतर एक सचमुच का यक्ष जन्मा है. जिसने सम्पूर्ण रोमेंटिकता को एक विशेष अर्थवत्ता दे दी है. काल्पनिक या अर्द्धकाल्पनिक रोमांस के स्थान पर पारिवारिक जीवन का स्नेह रह-रह कर उसके मन में उमड़ आता है. इससे पूर्व कभी भी कवि ने 'पारिवारिक जीवन को व्यंजना का विषय नहीं बनाया था'. यह इस बात का प्रमाण है कि कवि की दृष्टि बदली है. हजारों मील पर बैठे हुए उसे; 'मालीपुरे की मालिनें' विकल नहीं करतीं; साध्वी पत्नी की समर्पिति सहारा देती है—

'तुम्हारी चाय
उफ किन पत्तियों की
स्निग्ध हरियाली समाए है.
निरी बेजान प्याली में
घुली हैं साँझ की किरनें
तुम्हारी आँख का प्रतिबिम्ब
जिसमें उभरता आता
हजारों मील की दूरी
उसी से नाप मैं पाता'

इधर हिमालय के सहचारी जीवन को भी कवि ने खूब जी भर कर जिया है. महानता से सदा अभिभूत होनेवाला कवि उसके विराट स्वरूप में तन्मय हो गया है. अंतः प्रकृति बाह्य प्रकृति से एकाकार हो गई है—

'एक सोता ढल रहा मुझमें,
शिखर की मूक बिखरन-सा'

प्रकृति से तादात्म्य की एक परिणति सौन्दर्य-चित्रों में कलात्मक गहराई के रूप में हुई है. कहीं समूचा हिमालय 'धरती की हथेली पर रखा' है तो कहीं वह 'स्निग्ध सुधि की राशि-सा जमा हुआ' दिखाई देता है. विंध्य-हिमालय में प्रकृति-चित्रों का जितना बाहुल्य और वैविध्य है, उतना सुमनजी के काव्य में पहले कभी प्रकट नहीं हुआ था. इसका एक कारण प्रकृति का सदैव सान्निव्य और दूसरा मुक्त रूप में हार्दिक अभिव्यक्ति में खोजा जा सकता है.

इस संग्रह मे कतिपय नितान्त भिन्न संदर्भो की रचनाएँ हैं. जिनमें कवि का प्रौढ़ चिंतन, व्यंग्य और अभिव्यंजना की सामर्थ्य देखी जा सकती है. यथा 'युग की गायत्री', 'चेतना का मूल', 'पौ फटने से पूर्व' 'माँ गई' आदि.

'युग की गायत्री' में 'पथराई आँखें' और 'बिलखती मिट्टी की भूख' के प्रति एक गहरी आत्मीयता है. वस्तुतः धर्म की सन्निहिति लोक-धर्म में है और मनुष्यता की यही शर्त है कि आदमी लोक-जीवन को सुन्दर बनाने के प्रयत्नों में जुटे. यह कविता ऋषियों की गायत्री की जीवित व्याख्या है. 'चेतना का मूल' एक सशक्त रचना है. जिसमें प्रलयकालीन वट-वृक्ष का प्रतीक लेकर कवि ने दुर्धर्ष और अप्रतिहत प्राण-धर्म की समर्थ व्याख्या की है. सुमन का ओज, भाषा की शक्ति और जीवन के प्रति प्रबल आस्था इस कविता में द्रष्टव्य है—

'प्रलय मेघ घटाटोप
फटते मूसलाधार
अंधकार ज्वार बना
ज्वार बना अंधकार
लहरों पै लहर टूट
उठतीं भूधराकार
पानी भी परशुधार के
प्रहार पर प्रहार
अरर छाः अरर छाः'

इस कविता को पढ़कर छायावादी कवियों में सबसे अलग खड़े हुए निराला की याद सहसा ताजी हो आती है. लगता है—आचार्य वाजपेयी जी ने ऐसी रचनाओं के आधार पर ही कहा था कि **हिन्दी में निराला के पश्चात् इस धारा के सबसे समर्थ कवि सुमन हैं.** 'पौ फटने से पूर्व' कविता में कांपलेक्स और समझौता दोनों है. विरोध से आरम्भ करके समझौते और आशावाद वाली आदर्शवादी परम्परा सुमन को कहीं भी नहीं छोड़ती। कई बार यह उन्हें पीछे भी ले जाती है, और कई बार एकेडेमिक स्तर की भीरुता की ओर भी. आशा बुरी नहीं है. आशावाद बुरा है. क्योंकि यह कई बार आदतन निराशा में भी आशा ठाँसता है. 'पौ फटने से पूर्व' के अंधेरे का कवि ने जिक्र किया. यह अन्धेरा है 'प्रयोगवादी कविता' का. पर अन्त में वह प्रयोगवाद को नए उदय की भूमिका मान लेता है. नई काव्य-धारा के प्रति यह पूर्वाग्रही दृष्टि और बाद में रूढ़ समझौता है. कुछ हो, इस समूची व्यंग्य-कविता मे अजीब 'हाँच पाँच' है. हाँ, कवि सुमन की सर्वथा नई और चपल भाषा के दर्शन इसमें होते हैं. इस कविता की मुख्य उपलब्धि यही लगती है. 'माँ गई' एक अत्यन्त भावपूर्ण रचना है. यह दिखाती है कि गहरी

भावानुभूति को अलंकृति और बहुत से फालतू पर्यायवाची शब्दों की आवश्यकता नहीं होती—

आज मुझे प्यार करे
कोई नहीं, कोई नहीं ।
अब मैं दे सकता हूँ,
आंशिक सहानुभूति
जग के अनाथों को (आरम्भ में)

꙳ ꙳ ꙳

माँ का भी सगा नहीं
मुझसे कभी कोई करे
आशा नहीं प्यार की (अन्त में)

इन विरोधी-सी लगनेवाली पंक्तियों में कितना गहरा क्षोभ और 'आत्म-दाह' है!

लेकिन कुछेक उक्त रचनाओं को छोड़कर इस संकलन में लगता है कि कवित्व के पुराने स्रोत सूख गए हैं. क्योंकि सहज भावावेश, मांसल कोमलता और ऊष्मा जो कवि सुमन की विशेषताएँ हैं—इस संग्रह में प्रायः अनुपलब्ध हैं. भावावेश का स्थान बौद्धिकता ने; प्रसारधर्मिता का स्थान संक्षिप्तता ने और भाषा के इजाफे का स्थान उसकी मितव्ययिता ने ले लिया है. ये पहलू निश्चय ही कवि-विकास के सूचक हैं.

इस कृति में कवि कई मानों में अपने को ही पीछे छोड़ चला है. अपने ही बनाये हुए घेरों को तोड़ने और नए प्राण-धर्म की तलाश करने को सतत् आतुर दीख पड़ता है. सहजता, मितव्ययिता, यथार्थ और बौद्धिकता के महत्व को वह साग्रह स्थापित करना चाहता है. कदाचित् इसके लिए अध्यापक को कूटनीतिक में बदलनेवाली जीवन-व्यवस्था भी उत्तरदायी है.

गौरीगुरु हिमालय के चरणों में बैठकर अपने चिर परिचित अध्यापकत्व के प्रति कवि का मोह भंग हुआ है । आत्म-निरीक्षण और पाश्चात्ताप की प्रवृत्ति रह-रह कर झलक उठती है. 'अनुष्ठान', 'उधेड़बुन', 'प्रायश्चित्त' आदि ऐसी ही कविताएँ हैं. जिनमें कहीं वह कहता है—'भूलों का प्रायश्चित्त करो, मेरे मन', कहीं कहता है—'जो कह डाला वह सचमुच ही हल्का था.' कहीं वह अनुभव करता है कि—'यह यश का अभिशाप कि सबकी मुझ पर नजरें हैं.' इस प्रकार अब कवि उपदेशक के बजाए—'भोक्ता, ग्राहक और प्रेक्षक' बन कर उपस्थित है.

अन्तरात्मा की गहराइयों, विकल्पों और खिन्न सूनेपन को उसने कविता में भर-सक जीने की कोशिश की है. अपनी प्रवृत्ति से भिन्न, बाहर से भीतर की ओर की यह दुःसाध्य यात्रा का आरम्भ है. फिर भी—

'खड़े खेत में झपकी मत लो
नींद खुमारी त्यागो
मेड़ न बाँधो, बाढ़ न रोको
रात-रात भर जागो'

आदि भाषण देने के ढंग की पंक्तियाँ भी विंध्य-हिमालय में हैं. सन्तोष है कि इनका अनुपात कम है.

अतः विंध्य-हिमालय कवि-सुमन के काव्य की सर्वथा नई भूमि नहीं है. वह हर माने में सेतु है. विंध्य और हिमालय का; गत और आगत का; नए और पुराने सुमन का. कवि अपनी मध्ययुगीन आस्था को बलपूर्वक नकारने के आग्रह से मुक्त होने के प्रयास में बहुत सहज हो गया है. क्या यह सहजता आज के जटिल युग में व्यक्ति की एक उपलब्धि नहीं है ?

विंध्य-हिमालय का रचनाकाल सात वर्षों में बिखरा है. सृजनशीलता के सात वर्ष कम नहीं होते और विशेषतः उस कवि के लिए जिसे 'हर क्षण जीने की बेचैनी हो.' पर लगता है कि सुमन के कवि ने इन वर्षों को बहुत आहिस्ते से जिया है. एक सर्वथा भिन्न जीवन जीने की कभी-कभी यह भी प्रतिक्रिया होती है कि रचनाकार कुछ काल के लिए केवल चीजों को समझता और उसका आस्वादन लेता है, लेकिन सृजन कुछ थम जाता है. कई बार अभिव्यक्ति के नये मार्गों के संधान में जुटने के कारण भी ऐसा होता है. ये दोनों ही कारण विंध्य-हिमालय की लघुता के उत्तरदायी हैं वैसे कवि सुमन की गरिमा के लिए इसे और भी छोटा होना था, ताकि कुछ भर्ती की कविताओं को छुट्टी मिल जाती प्रयोगधर्मिता इस संग्रह की अन्यतम विशेषता है. कवि नये सन्दर्भों, स्रोतों और शैलियों की खोज कर रहा है. पुरातनता का निर्मोक उतार फेंकने की इतनी व्यग्रता कवि सुमन में पहले कभी भी नहीं देखी गई थी.

'चेतना के मूल' के पश्चात् लगभग सभी कविताएँ मुक्त छन्द में लिखी गई हैं पुस्तक में यह एक बहुत स्पष्ट-सी विभाजनरेखा तो इसी आधार पर खींची जा सकती है. यद्यपि इसके पहले भी डॉ० सुमन ने मुक्त छंद की रचनाएँ लिखी हैं. पर वे नगण्य हैं और कवि के आग्रह और प्रवृत्ति के रूप में नहीं लिखी गईं. छंद पिछली काव्य-प्रवृत्ति को नई काव्य-प्रवृत्ति से पृथक् करनेवाला एक आवश्यक

लक्षण है. भाषा की सहजता एक अन्य विशेषता है. प्रगतिशील होने पर भी कवि सुमन इतने सहज कभी नहीं थे. पहले की कविताओं में सहजता जहाँ भी आई है, वह लेखकीय विवशता है, उसकी सृजन आकांक्षा नहीं है. अब जो सहजता आई है वह भाषा पर पूर्ण अधिकार के पश्चात् अपने को सहज रूप में व्यक्त करने की आकांक्षा का परिणाम जान पड़ती है. सहजता होते हुए भी उसमें गहरी व्यंजना है. भाषा की मितव्ययिता डॉ० सुमन जैसे भाषामोही की असाधारण उपलब्धि ही कही जायेगी. 'तुम्हारी मर्जी' कविता में कवि ने कहा है—

दूर-दूर पास-पास
पास दूर-दूर
देह-गेह नाते सब
होते चूर-चूर
ईंट-ईंट जोड़-जोड़
रहना भी क्या?

इस पंक्तियों में भाषा-संक्षेप और अर्थ का विस्तार दोनों एक साथ देखे जा सकते हैं.

कवि की भावी आकांक्षा का संकेत भी यहाँ-वहाँ मिलता है. कल्पना से ऊब कर कर्म-संगर में कूद पड़ने की व्यग्रता इस सन्दर्भ में द्रष्टव्य है. रवीन्द्र गीतांजलि लिखकर ही सन्तुष्ट नहीं हो सकते थे, उन्हें शांति-निकेतन भी रचना था. और कवि सुमन भी कुछ 'रचना' चाहते हैं. इसलिए उनका यह कथन कवित्व की इति नहीं कर्म का आरम्भ है—

'हिमगिरि के उर का दाह दूर करना है,
मुझको सर-सरिता नद-निर्भर भरना है
मैं बैठूं कबतक केवल कलस सम्हाले,
मुझको इस युग का नमक अदा करना है.'

× × ×

'जिन उपकरणों से मेरी देह बनी है,
उनका अणु-अणु धरती की लाज बचाए.'

इस प्रकार कवि सुमन को नये समारोह के साथ प्रस्तुत करनेवाली कृति है—'विंध्य हिमालय', उसमें उनके काव्य और चिन्तन की नई दिशाएँ सामने आई हैं. नई काव्य-धारा और नई चेतना से कदम मिलाकर चलने की तत्परता यह आशा बँधाती है कि पुरातनता उनकी ताजगी को निगल नहीं सकेगी.

हाँ, मुझे लगता है कि कोई एक त्रासदी कवि के भीतर सुबक रही है, जिसका 'संकेत'—उसने स्वयं ही आरम्भ मे दिया है—

> 'एक अतल मूक व्यथासिक्त करुणगाथा अव्यक्त ही रह गई है, अभी समय उसकी गवाही देने को तैयार नहीं.'

लगता है कि समय जब गवाही देगा तब कवि की यह व्यथासिक्त करुण गाथा अवश्य ही मुखर होगी—शायद संवेदना का अधिक गहन, अन्तरंग अंग होकर.



एक महान् कविता : जल रहे हैं दीप जलती है जवानी

जयशंकर 'प्रसाद' की 'प्रलय की छाया,' 'निराला' की 'राम की शक्तिपूजा' और सुमित्रानन्दन पंत की 'परिवर्तन' कविता की कोटि में प्रगतिवादी युग की यदि कोई कविता रखी जा सकती है तो वह 'जल रहे हैं दीप जलती है जवानी' है.

इस कथा-कविता में महाकाव्य का महत्त्व अन्तर्हित है. आधुनिक युग में मैथिलीशरण गुप्त ने तुलसी के राम की मर्यादा और महानता का पुनः स्मरण कराया था. 'निराला' ने उनकी अप्रतिहत प्राणवत्ता और गहन मनःसंघर्ष को व्यक्त किया था. परन्तु सुमन ने वाल्मीकि और तुलसी के राम का पुनर्मूल्यांकन करते हुए उन्हें संघर्परत सर्वहारा के नेता के रूप में खड़ा किया है. कवि ने एक ओर परम्परागत सांस्कृतिक देवत्व को संवेदन एवं संघर्षशील मनुष्यत्व के रूप में स्थापित किया है, दूसरी ओर उसने सामन्तवादी व्यवस्था के एक चरित्र को बिना ध्वस्त किये जनवादी चरित्र में विवर्तित कर दिया है. वैसे राम का चरित्र ही कुछ इस ढंग का है कि वे स्वभावतः नेता और नियति से राजा प्रतीत होते हैं. परन्तु चरित्र की मूल अन्तर्वाही चेतना की पहचान एक मर्मभेदी दृष्टि ही कर सकती है. फिर आद्योपांत उसके तर्कसंगत निर्वाह के लिए विशेष कलात्मक कौशल भी अपेक्षित है. कवि सुमन इस कृति में दोनों दृष्टियों से सफल रहे हैं.

हल की नोक से सीता के प्रकट होने की कथा को कवि ने कृषि युग से उत्पन्न समृद्धि या कृषि-फल का प्रतीक माना है. इस 'धरा की आत्मजा' का वरण एक समर्थ और शक्तिवान् पुरुष ही कर सकता था. जो पुरानी मान्यताओं को ध्वस्त कर नये युग को प्रतिष्ठित करने के लिए कृत संकल्प और समर्थ हो. शिव का धनुष पुरातन पुरुष की जर्जर व्यवस्था का प्रतीक था. युगनिर्माता राम ने उसे तोड़ कर नये युग की घोषणा की और धरती की नई आकांक्षा का वरण किया. यह वह 'अच्युत'—सुदृढ़ और अविभक्त-पुरुष था, जो पत्थर में भी संजीवनी डाल सकता था; बंजर को उर्वर बना सकता था—

धनुष को राम ने तोड़ा
घने घनश्याम ने तोड़ा
नया निर्माण करना था
पुराना तो पुराना था.

× × ×

हुई आश्वस्त भयभीता
खिली धरती, मिली सीता
दिशि दिशि दुन्दुभी दमकी
वही जीता, वही जीता
किया जिसने अहिल्या-सी शिला को
प्रीति परिणीता.

अब युग-निर्माता की त्रासदी का आरम्भ होता है. निहित स्वार्थों की सामन्तवादी साजिश से उसे अधिकार-च्युत कर दिया जाता है. यहाँ तक कि उसे पहनने के कपड़े भी नहीं दिये जाते और नंगे पैर जंगल में भटकने के लिए, शहरी सीमा से बाहर निकाल दिया जाता है. अतः राम पहला 'सर्वहारा' है. सामन्तवादी क्रूरताएँ वेश बदल कर जंगल में भी उसका पीछा करती हैं. परम शोषक (किसानों के घरों के शेष दाने बीन लेनेवाला) रावण इस सर्वहारा राम से अपनी धोखाधड़ी और पैंतरेबाजी से उसकी मेहनत से उपलब्ध धरती की भेंट को भी छीन लेता है. क्योंकि सामन्ती प्रवृत्ति मेहनतकश इन्सान को सब तरफ से तोड़ कर उसके व्यक्तित्व को भी खरीद लेना चाहती है. यह शक्ति मुक्त प्रकृति को भी खरीद कर दास बना लेती है—ताकि आदमी सिवा उसके कहीं से कुछ प्राप्त नहीं कर पाये—

'इन्द्र जिसके द्वार पर दरबानी करते थे,
पवन पंखा झला करता था, पानी मेघ भरते थे.'

परन्तु राम वह कृषक है जिसका मनोबल ऊँचा है. उसने नये युग के आरम्भ का संकल्प किया है, मुगालते से ही, या नैतिक दावों से ही उससे उसका हक छीना जा सकता है. लेकिन जब वह इस पूरी साजिश को समझ कर जाग उठता है—तो कोई उसे उसके अधिकारों से वंचित नहीं कर सकता.

राम की ही तरह उस जंगल में और भी सर्वहारा थे—'वानर'-'भालू' ये सदा रावण और उसके क्रीत गुलामों और नृशंस साथियों के अत्याचार सहते

रहते थे. मजा यह था कि जो हवेलियाँ इनकी रक्त-मज्जा से उठी हुई थीं—वे ही इन्हें असभ्य और जंगली करार देती थीं—

सुबह से शाम तक जो राक्षसी अन्याय सहते थे,
जिन्हें सब जंगली हैवान, बन्दर भालु कहते थे,...

इस संत्रस्तों का राम ने संगठन किया. क्रूर सामन्ती शक्ति के विरुद्ध इस नई जन-शक्ति ने विद्रोह कर दिया. इनकी सहायता के लिए किसी 'अवधेश' या 'मिथिलेश' की सेना नहीं आई थी, फिर भी इनकी शक्ति और जोश कम नहीं था—

'नई जन-शक्ति की हर साँस से हुंकार उठती थी
प्रबल गतिरोध के विध्वंस की धधकार उठती थी'.

जन-शक्ति जब तक सुप्त होती है; अपने अधिकारों के प्रति उदासीन होती है—तब तक उसका तिरस्कार और शोषण भले ही किया जाए; परन्तु जाग जाने पर तो वह महीधर फाँद देती है और समुद्र बाँध देती है. जो शक्ति सर पर कफन बाँध कर अपने को प्रलय में झोंक देने के लिए विह्वल हो, उसका मुकाबिला भाड़े के सैनिक और विलासी शक्ति-सामंत नहीं कर सकते. परिणामत: एक-एक कर शक्ति के गढ़ ढहने लगे। राम ने अपनी ओर से जब जनशक्ति का वार दुश्मन पर किया तो तमाम जर्जर व्यवस्थाओं की विकट चट्टान ढहा दी गई—

'युगों की साधना-सी राम ने जब शक्ति छोड़ी थी
किसी जर्जर व्यवस्था की विकट चट्टान तोड़ी थी'.

यही धनुपभंग की पूर्णाहुति थी. क्योंकि धरती की उपलब्धि की रक्षा का वचन सर्वहारा ने आज पूरा कर दिया था. आज नर-नारी मुक्त हो गए. साधनहीन जीवन खिलखिला उठा. इसी के साथ सम्पूर्ण यातनाओं का अंत हो गया. जनता अपने नायक से मिली.

राम की कथा में रावण-वध के साथ ही अयोध्या से निर्वासन की अवधि पूरा होना भी सटीक है. वस्तुतः अयोध्या के राजगृह की साजिश और स्वर्णपुरी के रावण का अत्याचार एक ही सामंतवादिता के दो पैतरे थे. जनता के सफल विद्रोह से ये दोनों एक साथ खत्म हो गए.

अयोध्या में नए युग को बुलाने की इतनी बेकली थी कि जनता किसी आकाशी ज्योतिर्पिंड की प्रतीक्षा न कर सकी. इसलिए उसने घिरी हुई अमा-वस्या की रात्रि में स्वयं दीपक जला कर अपने लिए प्रकाश और उल्लास को

जन्म दे दिया. वस्तुतः दीपों की यह परम्परा मानवीय उल्लास के प्रगीतों की परम्परा है—

'लाल गीतों की प्रगीत-परम्परा
थी मुस्कुराई.'

सांस्कृतिक परम्परा और एक विस्मृत युग की याद दिलाते हुए कवि फिर अपने वर्तमान में लौट आता है. फ्लैशबैक की चमत्कृति से ठोस और दयनीय यथार्थ में लौटते हुए वह देखता है कि जनता आज मृत प्रथाओं को दुहरा रही है. वह जनोत्सव के मर्म को भूल गई है. उस समय जब कि अमा की काली रात घिरी हुई है—लोग खंडहर सजाते और पुरानी कथाओं को स्वप्न में दुहराते हैं. परन्तु जनता का मनोबल विश्वास के सहारे बढ़ाते हुए वह आशा प्रकट करता है कि फिर नई बाती जलेगी. फिर सुहानी बस्ती जल उठेगी और प्रज्वलित दीपक यौवन की अग्नि का प्रतीक बन जायँगे—

...'किंतु जन जागृति धधकती जा रही है,
जल उठेगी फिर नई बस्ती सुहानी.
जल रहे हैं दीप जलती है जवानी'.



यह कविता सांस्कृतिक वस्तु के प्रति कवि के समाजोन्मुख आचरण (Treatment) की प्रतीक है. कवि के मन मे इस कथा के प्रति कोई, धार्मिक, नैतिक या रूढ़ विकल्प नहीं है. उसकी सामाजिक चेतना इतनी सुचिन्तित और आश्वस्त है कि सम्पूर्ण कविता में दिशाभ्रम या पीछे खींचनेवाला आग्रह या कोरे स्वप्न देखने जैसी कोई प्रवृत्ति नहीं आ पाई है. जिस प्रकार सुमन की समन्वयात्मक दृष्टि ने वस्तु और भाव; समष्टि और व्यष्टि; जन काव्य और कलाभिव्यंजना; पाश्चात्य जीवन दर्शन और भारतीय चेतना को विवेकसंगत आधारों पर अन्वित किया है; ठीक वैसे ही उन्होंने प्राचीन संस्कृति को नए युग-बोध से जोड़ा है. यह प्रयास भीतरी सूत्रों की खोज के द्वारा किया गया है; अन्यथा बाहर से किया गया ऐसा प्रयास निरर्थक नारेबाजी बनकर रह जाता. सुमन ने सच्चे अर्थो मे विलफ्रेड ओएन के इस कथन को सार्थक किया है—

'मैं आदमियों के खिलाफ झंडों के लिए नहीं,
मौत के खिलाफ जिंदगी के लिए लड़ता हूँ'.
(दिनकर द्वारा अनूदित)

एक विशिष्ट विधि और आधार पर जनता के संघर्ष को आर्थिकता पर खड़ा करने और उसका नियमन करने के अतिरिक्त मूलतः साम्यवादी चेतना कोई सहसा उत्पन्न अज्ञात चेतना नहीं है. बाहरी विभेद के भीतर निहित मूल जीवन-रस की खोज करने पर सतही विभेद मिट जाया करते हैं. वस्तुतः प्रगति युग का यही एप्रोच होना चाहिए था. परन्तु चिंदी को लेकर बजाजखाना खोलनेवाले बहुतेरे नक्कालों ने इस पूरे लोकवादी आंदोलन के मर्म को भ्रष्ट कर दिया. लेकिन जब हम 'जल रहे हैं दीप जलती है जवानी' जैसी कविताएँ देखते हैं—तो हमें प्रतिनिधि कवियों के मूल आशयों का पता चलता है. यह आशय विभक्त दृष्टियों के अंतराल को पाटता है और उन आशंकाओं को भी समाप्त करता है जिनके आधार पर व्यक्तिवादी एकाग्र अहम् इस जन आन्दोलन को 'भेड़ बकरी निर्माण की प्रक्रिया' का फतवा देता रहता है. लेकिन प्रगतिवाद ने कहा है कि संत्रस्त और आहत मानवता के प्रश्न को व्यक्ति की मुक्ति के स्तर पर हल नहीं किया जा सकता. उससे जनवादी संगठन के स्तर पर ही निपटा जा सकता है. क्योंकि निहित स्वार्थ संगठित हैं, उनकी वाहिनी और शक्ति अपरिमित है. वे धर्म और नैतिकता को हथियार की तरह अपने पक्ष में इस्तेमाल करते है. इकहरे प्रयासों को कुचलने के लिए वे बहुत समर्थ हैं. प्रगतिवाद ने यह कोई गलत बात नहीं कही थी.

सुमन भी चाहते हैं कि मनुष्य उन बुनियादी प्रश्नों को समझे जो सहस्राब्दियों से मनुष्य को कुरेदते आ रहे हैं. परन्तु उन्हें अजीबोगरीब खोल पहना कर प्रस्तुत किया जाता रहा है. हमारे जीवन को विषण्ण बनानेवाली परिस्थितियाँ आज यकायक पैदा नहीं हो गई हैं, पहले उन्हें प्रखरता से जाना नहीं गया था. हर बार उन्हें केन्द्र से भटका दिया गया था. इसलिए विषमता को ध्वस्त कर देनेवाली आवाजें 'नरो वा कुंजरो वा' की शक्ल अख्तियार करती रहीं. फलतः आक्रामकों के हौसले बढ़ते गए; शिकंजे कसते गए. हम हमेशा सत्य को कहानी और कहानी को स्वप्न में रूपान्तरित करते रहे हैं 'सुन रहे हो स्वप्न में जैसे कहानी'—अन्दरूनी स्तर पर हम आजवाली लड़ाई सदा से लड़ते रहे हैं—अनजाने. पर आज हमें पूरी जाग्रत अवस्था में धर्म, नैतिकता, भाग्य—सबकी नकाबें उतार कर अपने सवालों को निर्द्वन्द्व, तीखे और स्पष्ट रूप मे देखना होगा. कृषि-युग में भी जो अधिकारी था—वही निर्वासित था. सर्वहारा तब भी जंगली और हैवान था—आज भी यही सब हो रहा है. पहाड़ों को लाँघने और समुद्र को बाँधनेवाली कथा कोई धार्मिक जादूगरी नहीं, जन शक्ति की परिचायक है. यदि तत्वतः इस बात को समझ लिया गया तो अत्याचारी को उसी के हथियार से मात दी जा सकती है—

'घड़ी अन्तिम समझ दुनुकुल जले शोले गिराता था।
प्रबल जनबल उन्हें फिर मोड़ उन पर ही फिराता था।'

सुमन ने अपनी प्रवाहमयी काव्यात्मक शैली मे उस महान् युग की याद दिलाई है—जिसमे जनता ने अमावस को ज्योति-पर्व मे बदल दिया था. कदाचार को ध्वस्त कर, सदाचार की प्रतिष्ठा की थी.



काव्य की दृष्टि से कवि सुमन की यह कविता अत्यन्त उच्च स्तर की है. शब्दावली के चटख रंगों से इतने विस्तृत केनवास पर एक बहुत जीवन्त चित्र बनाया गया है. जिसमे बहुत कम रंगो मे बारीक कारीगरी के बजाय प्रभाव की शैली मे सब कुछ आँका गया है. तथ्य को तीखे और स्पष्ट रूप मे प्रस्तुत करने के लिए उन्ही प्रसंगो और अंशों को उभारा गया है—जिनका उभारा जाना अनिवार्य था. धनुपभंग-प्रसंग, वानरो की स्थिति, परम्परा से प्रचलित रावण के दशमुख आदि की कल्पनाओं को तीखे तर्कों की नोक से छेद दिया गया है यथा—
'जमाना बाहुबल का था, स्वयंवर का बहाना था.'

'सुबह से शाम तक जो राक्षसी अन्याय सहते थे
जिन्हें सब जंगली हैवान बन्दर भालु कहते थे।

  

कि बर्बर राक्षसों का जंगली वीरों से पाला था
महीधर फाँद डाले थे समुन्दर बाँध डाला था।'

  

'दहल का दंभ से जिसको सभी दसशीश कहते थे
प्रबल आतंक से दो बाहुओं को बीस कहते थे।'

यह है घटनाओं और दन्त कथाओं की तहो मे जाकर आशयों का लाना.

इस कविता की भाषा विपयक विशेपताएँ है—उसका ओजस्वी प्रवाह और प्रगतिवादी भाषा का सार्थक प्रयोग. श्रमिक, रक्तमज्जा, हवेली, असमत, जर्जर व्यवस्था, पारी, चारा, दलित आदि पचीसों ऐसे शब्दों के सार्थक और उपयुक्त प्रयोग है, जो सम्पूर्ण प्रसंगो को आज के ताजे युग से जोड़ते है. एक स्थान पर कवि ने कहा है कि—'बहुत दिन बाद दलितो के हँसी की आज पारी

थी,' यहाँ यदि 'पारी' को हटाकर 'बारी' कर दिया जाए तो श्रमिक-जीवन का एक सम्पूर्ण चित्रांकन मिट जाता है. यह 'पारी' श्रमिकों का कार्य-काल है. इससे सांस्कृतिक बोध आधुनिक बोध में रूपायित हो जाता है. एक उठते हुए अंकुर का इठलाता हुआ गौरव कितनी खूबी से इस पंक्ति मे—और पंक्ति के 'चारा' शब्द मे व्यक्त हुआ है—

'मृत्यु पर जीवन-विजय उद्घोष करता
मैं अमर ललकार हूँ, चारा नहीं हूँ।'

'अंकुर' प्रगतिवादी युग में न चारा है न बेचारा. वह अमर ललकार है, जीवन की अप्रतिहत शक्ति है. अदने इन्सान मे भी प्रगतिवाद ने इसी परम शक्ति का बोध उत्पन्न किया था. विषम वायु मे चुनौतियों को मुस्कुरा कर जवाब देने-वाली छोटी-सी लौ का मौज और गौरवपूर्ण निश्चिन्तता को इस पंक्ति मे कितने सार्थक उपमान द्वारा व्यंजित किया गया है—

'सनसनाता जब प्रभंजन लौ ध्वजा-सी फरफराती.' 'ध्वजा' का उपमान कितना महत्वपूर्ण है ? लौ की गरिमामय विजय और बेफिक्री को यह किस शान से व्यक्त करता है ?

वातावरण को बाँधने और परिस्थितियों के कोमल-क्रूर चित्रों को उपस्थित कर देने का कौशल इस कविता मे एक अन्य विशेषता है—

(१) परिस्थिति की भयानक क्रूरता का चित्र—

'अधर सूखे गाल पिचके दीन कोटर लीन आँखें
शलभ बेसुध छटपटाते क्लिन्नमन विच्छिन्न पाँखें
मुर्दनी वातावरण में धुएँ की घूर्णित घुटन-सी
दर-बदर फैली हुई बदबू विकट शव के सड़न-सी
उग रही कीटाणु की फसलें,
प्रलय-अणुबम बरसता........'

(२) कृषि-सभ्यता के राम का परिणय और इसी प्राकृतिक जीवन का मधुर मुग्ध रोमांस का चित्रात्मक एवं आकर्षक वर्णन—

'फसल उठती जवानी मे लहरती झूम जाती थी
हवा दो हाथ आगे बढ़ उसे झुककर उठाती थी
लिपटते ही खुदी खुद बेखुदी को चूम जाती थी....'

मक्का का महमहाना, अरहर का सरसराना, अलसी का आँख मलना आदि में इस कृषि-जीवन का वैभव और उल्लास व्यक्त होता है.

इतने सार्थक और प्रभावपूर्ण शब्दों का प्रयोग एक साथ सुमन की किसी कविता में नही है. कवि ने विचार को कला के एक सुघर और सम्प्रेषणीय माध्यम से इस तरह व्यक्त किया है कि वह सामान्य व्यक्ति के लिए अर्थ-बोधक और कला मर्मज्ञ के लिए गम्भीर और मार्मिक व्यंजना बन गई है. इस माने में यह एक जनवादी साहित्यिक कृति है.

सुमन की कमजोरी भी इस कविता मे मिलेगी. कई जगह कविता लूज है. लगता है कि जैसे नाटककार का ध्यान लेखन के समय भी मंच पर और पात्रों के अभिनय पर लगा रहता है, ठीक वैसे ही रचना करते समय सुमन भी कदाचित् मंचीय दृष्टि से कविता की नाप-जोख करते चलते है. इसलिए बाहरी प्रभाव कविता मे पैदा हो जाता है. वह बाहर से बाँधती है पर बहुत गहराई मे नही धँसती या वह प्रकाश की किरण बन जाती 'च' किरण नही बनती. परन्तु एक जनवादी युग मे जब कि कवि का समयुगीन परिवेश रचना को प्रचार का साधन और नारेबाजी का घटिया दर्जा दे रहा था. सुमन ने इस कविता को नई क्रान्ति और दृष्टि का प्रतीक बना दिया. यही उनकी विशेषता है.

यह वह कविता है जहाँ कवि मूर्धा का आरोहण कर रहा था. यदि इस कविता की परम्परा आगे बढ़ाई जा सकती तो कवि का एक पृथक् और विशिष्ट इतिहास बन सकता था. पर उसके बाद तो 'पर आँखें नहीं भरी' का सृजन होना था.

फिर भी सुमन को पूरी शक्ति और सम्पूर्णता के साथ व्यक्त करनेवाली यह अकेली कविता है. सुमन के विचार, अभिव्यंजना, ओज, रोमांस, आशा—सबकी प्रतीक अकेली कविता. आश्चर्य है कि विवेचक कवि की इस महान् कविता को भूले हुए है और उसके मूल्यांकन के लिए ऐसी अनेक मामूली रचनाओं को उठा लेते है—जिनकी चर्चा सुमन को समझने मे कुछ भी योग नही दे सकती.



शिल्पी सुमन

प्रगतिवादी कवि सबसे अधिक अवहेलना का भाव शिल्प के प्रति रखता है. छायावाद की भाववादी आत्मगतता, कल्पना-प्रवणता तथा कला-वैभव के अस्वीकार तथा जन-जीवन के त्रास और समाज-रचना के गम्भीर विपर्यय के सोद्देश्य चित्रण को लेकर प्रगतिवादी कविता का प्रस्थान होता है. प्रगतिवादी कवि को लगा कि छायावाद को केवल भाव और कथ्य के स्तर पर नकारने से उसका निराकरण नहीं होगा. उसके अनुपम शिल्पविधान का तिरस्कार अपनी स्थापना के लिए अनिवार्य है. शिवमंगल सिंह सुमन का भी अभिव्यंजना-शिल्प के प्रति ऊपर से वाद-समर्थक आचरण रहा है. जनवादी काव्य के लिए कवि कला को अस्वीकार करता हुआ लगता है—

'इस विभीषिका पर संज्ञाहत
जपता कला कला की माला
तो धिक् धिक् मानव मन मेरा,
निष्फल, दग्ध हृदय की ज्वाला.'

लेकिन कवि सुमन का यह अस्वीकार सतही है. उसका काव्य इस कथन की पुष्टि नहीं करता. उसके अवचेतन में गम्भीर कला-संस्कार है. काव्य में सम्प्रेषण की महत्ता को स्वीकार करने के साथ ही हम कला-विधान का महत्व स्वीकार लेते हैं. क्योंकि शिल्प अभिव्यंजना को अधिक स्पष्ट, प्रभावशील एवं गम्भीर रूप में हमारे सम्मुख रखता है. क्रान्ति, सामाजिक यथार्थ, भावलोक की निरर्थकता, सामूहिक विद्रोह आदि की अभिव्यक्ति भी कला के सहयोग से अधिक समर्थ, सशक्त और सार्थक रूप से की जाती है. इसलिए शिल्प बैसाखी नहीं मेरुदण्ड है.

प्रगतिवाद की केन्द्रीय धारा में शिल्प के प्रति सबसे सचेत दो कवि हैं—केदार और सुमन, केदार मुख्यतः बिम्बों और चित्रों के कलाकार हैं. सुमन मुख्यतः भाषा के जौहरी और प्रतीकों तथा प्रवाह के कवि हैं.

जिन कवियों को प्रगतिवादी भाषा के निर्माण का श्रेय है उनमें सुमन मुख्य हैं. इसका कारण यह है कि सुमन को अपनी भाषा का दुहरा प्रयोग और जाँच करने का अवसर मिला है. वे कवि सम्मेलनों के जादूगर कवि हैं. इसलिए अपने जनवादी काव्य का जनता पर क्या प्रभाव होता है—इसे उन्होंने प्रत्यक्ष देखा है. भाषा की जड़ाऊ शैली भी उन्हें मंच से ही मिली है. वे बड़े समारोह के साथ महत्वपूर्ण शब्द को रेखांकित करते हुए; एक विस्तृत भाषा पटल पर जड़ते हैं. यथा—

'जल उठे घर जल उठे वन
जल उठे तन जल उठे मन
जल उठा अम्बर सनातन
जल उठा अम्बुधि मगन मन.'

इसमें दीपावली की विराट् चेतना और जीवन के सम्पूर्ण आयामों का अलग अलग उल्लेख करते हुए कवि ने 'जल उठने' के साथ ही सम्पूर्ण क्षेत्रों को भी उभार कर रेखांकित कर दिया है. इसमें भी 'सनातन अम्बर' और 'मगन मन' अम्बुधि की संरचना में क्रमशः परम्परागत आस्थाएँ और आत्मलीन एकांतिकता विशेष रूप से व्यंजित होती है.

यद्यपि सामासिकता और संक्षिप्त गठन की दृष्टि से यह शैली कमजोर है. तथापि लोकोन्मुखी प्रगति काव्य की दृष्टि से यह एक विशिष्ट शैली है; जो सम्बोधन काव्य को एक तकनीकी रूप देती है. सुमन के ही काव्य में, जब इसका प्रसार प्रेम और आत्माभिव्यंजक उक्तियों के मध्य होता है—तो इससे खोखलापन प्रकट होता है. 'पर आँखें नहीं भरी' की कविताओं मे इसे दोष के रूप में देखा जा सकता है.

सुमन ने प्रगतिवादी शब्दों को विशेष वजन और व्यंजना दी है. जनभाषा के शब्द को आत्मा को बिम्बों, प्रतिकों, ध्वनि, रंग आदि कई कसौटियों पर कस कर उन्हें काव्य की व्यंजकता देना स्रष्टा का ही काम हो सकता है. यहीं आकर राजनैतिक भाषा काव्य की भाषा बनती है और यहीं असफल हो जाने पर वह नारेबाजी का रूप ले लेती है. उदाहरणार्थ 'लाली' शब्द को ले लीजिये. यह साम्यवादी 'रंग' और 'खूनी क्रान्ति' का द्योतक शब्द है. पर इसे कवि ने नवीन ज्योति, नवीन बलिदान और नवीन उद्भव में रूपायित कर दिया है. कठोर शब्द को भी कोमलता मिल गई है—

'लाल दीपों की प्रगीत परम्परा थी मुस्कुराई.'

(विश्वास बढ़ता ही गया)

× × ×

अपने अतीत की कालिख को
लोहू को 'लाली' से धो दो

(प्रलय सृजन)

× × ×

आया वसन्त कोंपल फूटी
नव-सृजन शक्ति-सी लाल लाल

(विश्वास बढ़ता ही गया)

इसी तरह कवि ने क्रान्ति, आग, सर्वहारा, धरती आदि शब्दों को प्रगतिवादी अर्थवत्ता दी है. भक्तिकाल में जो तिनका निरर्थकता और नश्वरता का प्रतीक था उसे लघुमानव और शोषित मनुष्यों का प्रतीक बनाकर उसमें शक्ति की प्रतिष्ठा की गई है. 'लहर' जो छायावाद में उमंग और सुखद अनुभूति का प्रतीक थी; सामान्य मनुष्य का प्रतीक बन गई है. इस तरह परम्परा से प्राप्त अनेक शब्दों को नया अर्थ दिया गया है—

'तिनका-तिनका खड़ा दे रहा
तुमको आज चुनौती'

× × ×

'आज सिंधु ने विष उगला है
लहरों का यौवन मचला है'....

सुमन के काव्य मे आए कतिपय प्रगतिवादी प्रतीकों का उल्लेख यहाँ पर्याप्त होगा—

* अमा = शोषक-युग
* ऊषा = जन-जागरण
* हाय हाय = शोषितों का आर्थिक त्रास
* प्रलय = क्रान्ति, कदाचार का ध्वस्त होना
* सिन्धु = जनसमूह
* अंधड़ = क्रांति

* रोटी = अधिकार या भाग
* शाम = अभावग्रस्त जीवन
* हड्डी के ढाँचे = दरिद्र मनुष्य
* बूँद = दलित मानव
* उलूक = शोषकगण
* विहान = समतावादी युग

हिमालय के समस्त परम्परागत प्रतीकों को अस्वीकार करके कवि ने उसे जड़ और विराट् शोषण परम्परा के रूप में चित्रित किया है—

'हिली हिमालय की जड़ काया,
दरक गई छाती.'

पौराणिक वामन का बहुत अच्छा उपयोग लघुमानव की विराट् शक्ति के रूप में किया गया है—

'भूलुत जगे तीन डग में
बावन ने तीन लोक फिर नापा.'

इसी तरह एक स्थान पर परम्परागत यज्ञ को विषमता ढहा देनेवाली क्रान्ति के रूप मे प्रस्तुत किया गया है—

'वैदिक अग्नि प्रज्वलित पल में
रक्त-मांस की बलि अंजुलि में
पूर्णाहुति हित उत्सुक होता
अब कैसा समझौता ?'

यह जन क्रांति की संघर्षमयी साधना के अन्तिम और निर्णायक चरणों का आक्रोशमय चित्रण है.

सुमन ने प्रगतिवादी बिम्बों की भी अत्यन्त समर्थ संरचना की है. जिससे कवि की सघन अनुभूति दृश्य, श्रव्य आदि अनेक रूपों मे दीप्त हो उठती है. सघन शोषण की अभेद्य परम्परा को लघुमानव में उत्पन्न प्रकाश की एक किरण द्वारा भेद देनेवाला यह बिम्ब उदाहरण के लिए लिया जा सकता है—

'अंध कोटर गहन गह्वर के तले पाताल की मोटी तहों को
एक नन्हीं किरन की पैनी अनी ने छेद डाला.'

इसी प्रकार 'अरहर सरसराती थी' द्वारा कवि ने श्रव्य बिम्ब उपस्थित किया है. पतझड़ की मौसम का एक कलात्मक चाक्षुप बिम्ब निर्मित करते हुए कवि मूल आशय तक पहुँच गया है. यहाँ बिम्ब ने अनुभूति और अभिव्यक्ति के सेतु का काम किया—

'उखड़ सी गई है साँस
श्लथ मंद चरणों की बदल-सी गई है गति
जैसे चल रहा हो कोई
पेड़ों के नीचे पड़े पतझड़ के पत्तों पर
हड़का हुआ कुत्ता एक
भागा जा रहा है दबे पाँव पिछवाड़े-से
चारों ओर घोर तिमिराच्छन्न व्योम
फैल-सा गया है किसी काली मसहरी सा'.
(ग्रीष्म रात्रि का प्रभंजन—कविता से)

यह एक संश्लिष्ट बिम्ब है जिसमें श्रव्य, स्पर्श और दृश्य तीनों के स्वरूप उपस्थित हुए हैं. इस चित्रण में एक विशिष्ट अनुभूति और सांकेतिकता है. इसी तरह व्यापक और तीव्र पीड़ा से ओत-प्रोत संसार का यह बिम्ब अत्यन्त सशक्त है—

'चेतना का शव लपेटे सृष्टि धाड़ें मार रोती'

अनेक स्थानों पर मात्र तटस्थ चित्रण द्वारा वस्तु, वातावरण और घटना का साकार चित्र उपस्थित करने का कौशल भी सुमन के पास है. विक्षिप्त 'निराला' की आकृति का यह चित्रण ऐसा ही है—

'हे नूतन छवि के कलाकार
गुंजित अनहद रव सहस्रार
अब क्यों उदास अस्ताचल की लाली निहार ?
थक गए ? होठ में पपड़ी, रुँधा कंठ
सजल आँखें धूमिल......
सच, इस मंजिल का ओर-छोर
पाना मुश्किल.'

यह सहानुभूति से द्रवित साकार चित्र है. परन्तु साथ ही समग्र व्यक्तित्व के वैराट्य

के बीच इस जिस्मी रूप को सापेक्ष ढंग से प्रस्तुत करके व्यक्तित्व की भीतरी साधना को भी प्रकट किया गया है.

सूरज का तमस से 'तुप' जाना, जुल्म का 'ककहरा', कपोतों का 'गुमकना' आदि शब्दों और मुहावरों का स्वतः निर्माण 'सुमन' के कलाकार का वैशिष्ट्य है. लाक्षणिक और व्यंग्य-प्रयोग तो सुमन के काव्य में सर्वत्र दीख पड़ते हैं. उदाहरणार्थ 'जर्जर' के इस प्रयोग में लाक्षणिक वैविध्य देखा जा सकता है—

'जर्जर-जीवन जर्जर-जगती
जर्जर पुलक-प्रणय'.

यहाँ जीवन, जगती और प्रणय-पुलक के संदर्भ में जर्जर के अर्थ भिन्न-भिन्न हैं.

प्रवाह और रवानी की दृष्टि से प्रगतिशील काव्य पूर्ववर्ती छायावादी काव्य को पीछे छोड़ देता है, क्योंकि यह मुख्यतः क्रांति और आक्रोश का काव्य है. सुमन में यह रवानी बहुत अधिक है. मोटे तौर पर सुमन के काव्य का प्रमुख लक्षण ओज, रवानी और प्रवाह ही हैं—

'स्वतंत्रता प्रेमी जनता की लाशों से
इस तरह पाटते शर्म न आती ?
क्या कहते थे, क्या करते हो
थूक थूक कर स्वयं चाटते शर्म न आती ?'

जैसी सैकड़ों ओज और प्रवाहयुक्त सशक्त पंक्तियों से सुमन का काव्य पटा हुआ है. सुमन ने प्रायः लम्बे और मध्यम छंदों का उपयोग किया है. क्योंकि वे प्रवाह को ठीक से साध सकते हैं. पर कहीं-कहीं छंदों के विशिष्ट प्रयोग हैं, यथा 'तूफानों की ओर घुमा दो नाविक निज पतवार', 'आज सजनि सावन के बादल बरस पड़े'. 'जल रहे हैं दीप जलती है जवानी' आदि में. इन कविताओं में छंदों के प्रयोग, यथास्थान अभिव्यक्ति को सम्पृक्त करने, पृथक् करने और ऋजुता एवं विस्तार के निर्वाह के लिए किए गए हैं. लयाश्रित मुक्तक छंदों के प्रयोग भी अनुभूति को सहज और मुक्त रूप में व्यक्त करने के लिए किए गए हैं.

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि सुमन जैसे कवियों ने प्रगतिवाद पर कलाहीनता के आरोप का व्यावहारिक उत्तर दिया है. भीतर और बाहर से पुष्ट ऐसी रचनाएँ प्रगतिवादी काव्य में बहुत कम हैं.

सुमन के काव्य की एक दूसरी धारा भी है—'प्रेम रोमांस' की धारा. वस्तुतः वही सुमन के कवित्व का उद्गम है. अपने युग मे व्याप्त घोर उत्पीडन को अपनी साँस मे अनुभव करते हुए कालान्तर मे कवि ने अपनी दिशा वदल दी थी—'अत: मूल मे निहित स्नेहमय उसी प्रज्ज्वलित लौ को कम्पन' ने सुमन के सम्पूर्ण काव्य मे अपने को प्रसरित कर लिया है. 'हिल्लोल' के प्रेम-गीतो के पश्चात् 'जीवन के गान', 'प्रलय-सृजन' और 'विश्वास वढता ही गया' इसी नवीन धारा की रचनाएँ है. लेकिन 'पर आखे नही भरी' मे कवि पुन: अपनी मूल चेतना की ओर लौट आया है.

प्रगतिवादी कविताओ के सन्दर्भ मे कला-विधान की चर्चा की गई है, परन्तु प्रेम-रचनाओ मे कवि का शिल्प विशेष कमनीय एवं मधुर हो उठा है. प्रेम के छोटे-छोटे स्पन्दनो का; उसके भीतर निहित रूप-राशि का वड़ा ही साग्रह चित्रण सुमन के सृजन मे मिलता है. प्रगतिशील रचनाओ के भीतर भी जहाँ ऐसे अवसर आए है—कवि ने उन्हे भरपूर आग्रह से सँवारा है. गुनिया के यौवन का यह चित्रण—

'जब उढ़ा ओढ़नी मलयज को
पल मे कृतार्थ हो जाता था
जब उभरे अंगों को छूने,
सावन घन घिर-घिर आता था'

या सीता और राम के मिलन का यह क्षण—

'धरा की लाड़ली प्रिय से लिपटने को ललकती थी
नई कोपल के ओठों से नई कलिका किलकती थी'

प्रकृति के संदर्भो और उपमानो से एक कमनीय और भावपूर्ण बिम्ब उपस्थित करते है.

स्मृति के माध्यम से प्रेम के संवेदनशील क्षणो का साकेतिक चित्र मन की भीतरी सतहों को छूता है—

कहाँ मिलतीं कहाँ खिलतीं—
कली छू साँस की गरमी
ढुलकती लाज की ऊषा,
लिए नीहार की नरमी.

छटाएँ कौंध के कुंडल पहन,
अभिसार को चलतीं
कुहासे के धुंधलके में,
किरन की आबरू खिलती.

प्रगतिवादी कवि की ओज और आक्रोश वाली भाषा जाने कहाँ अंतर्धान हो गई है और यह सुकुमार, कोमल, भाव-विदग्ध भाषा का एक नया संसार रच गया है. विभिन्न प्रसंगों और भावों में जितना अधिक कोई कवि अपनी अभिव्यंजना को साध पाता है उतना ही ऊँचा वह कलाकार है. छायावादी कवियों में यह शक्ति 'निराला' में सर्वाधिक है और प्रगतिशील कवियों में सुमन मे. विरोधों के वीच अपने शिल्प को निभा जाना एक विशिष्ट कलात्मक संस्कार का सूचक है.

प्रेयसी कहीं शरद-सी श्रृंगार कर रही होगी, इसीलिए तो प्रेमी के जीवन में निदाघ घिर आया है—

'सुलगता आकाश, धरती पुलकमाना
आज हरियाली गई पथ भूल
हृत उमंगों का भला कोई ठिकाना,
खो गई सरि खो गए दो कूल
तप्त अंतर में घुमड़ते तरलतामय प्राण
गल गए पाषाण'.

सम्पूर्ण व्यंजना में अतलस्पर्शी सांकेतिकता है, एक अजीव-सा सूनापन और आहत निराशा काव्य में जीवन-प्रसंग को चरितार्थ करती है. इससे भी अधिक तीव्र आकांक्षा इस पंक्ति में है—

'पूछती फिर-फिर विकल मनुहार
कब पकेंगे धान ?'

भावना को उसी रूप में संप्रेषित कर देना ही यदि कला-विधान का उद्देश्य है—तो कवि सुमन इसमें वहुत हद तक सफल हुए हैं. वे खिन्नता उदासी, राग, आक्रोश, आग्रह, अनुरक्ति सव कुछ पाठक तक सफलता पूर्वक संप्रेषित कर सके हैं.

सुमन की कला अवश्य ही कहीं-कहीं दोषपूर्ण है—जिनका संकेत पृथक् पृथक् संकलनों की विवेचना में किया गया है. विशेषत: कवि की आरंभिक कृतियों मे बहुत कुछ अनगढ़ता और सतहीपन है—भाव और कला दोनों दृष्टियों से. इसलिए प्राय: उनका शिल्पसौष्ठव उनकी प्रौढ़-कृतियों यथा—'विश्वास बढ़ता ही गया', 'पर आँखें नहीं भरीं' और 'विंध्य-हिमालय' में ही देखा जाना चाहिए. सुमन के कलाकार के साथ एक त्रासदी यह है कि जैसे भावना के स्तर पर अधिक देर तक वह गाम्भीर्य नहीं निभा पाता, वैसे ही कला के स्तर पर भी वह हर स्थान पर प्राणवान नहीं रह पाता. सुमन के काव्य में अनेक निरर्थक पंक्तियों, शब्दों और लूज गठन के स्थलों को आसानी से खोजा जा सकता है. परन्तु समग्रत: देखने पर विदित होता है कि कवि सुमन में कलात्मक प्रतिभा के स्तर पर अनेक वैशिष्ट्य है.

'विंध्य-हिमालय' में सुमन का मूल प्रवाह और ओज तो बहुत कम है. पर इधर उनकी अंतर्मुखता, बारीकी, सामासिकता आदि बढ़ी हुई दीख पड़ती है. उसमें शिल्प के दूसरे ही आयाम निखरे हैं। एक सादगी भाषा और व्यंजना के स्तर पर देखी जा सकती है. वृद्ध के स्मरण में कही गई ये पंक्तियाँ—

शरद की चाँदनी भी
सहमी खड़ी रही
वसुंधरा साक्षी है'.

या कि अपनी सचेत योजना की यह अभिव्यक्ति—

'मेरे अस्तित्व के सीकर
बिखर जाँय
यत्र-तत्र
पत्र-पत्र
जीवन को जिलाने में
खुद को पिलाने में



गिरि के गुरुत्व को
साभार राम राम है'

संक्षेप मे अभिप्राय को सफलतापूर्वक प्रस्तुत कर सकी है. दूसरे उदाहरण मे गिरि के गुरुत्व के प्रति जो व्यंग्य है और छोटे से व्यक्तित्व को सब ओर बिखरा देने की जो इच्छा है—वह राम-राम और पत्र-पत्र जैसे मामूली—प्रचलित सादे शब्दो मे अच्छी तरह व्यक्त हुई है. लगता है कि सुमन का आगामी काव्य लम्बे बिम्बों, घने चित्रों और कोमल-कांत प्रतीक भाषा का काव्य न होकर सादे बिंबो, सहज चित्रों और सामान्य भाषा में अभिव्यक्त काव्य होगा.



कवि सुमन : समग्रतः मूल्यांकन

[यह नहीं कहा जा सकता कि सुमन अपने जीवन का सबसे महत्वपूर्ण लिख चुके हैं. उन्होंने प्रगति-युग की संभावनाओं को भरपूर ग्रहण करके उसे श्रेष्ठ अभिव्यक्ति दी है. वे सच्ची प्रगतिवादिता को वाणी देनेवाले कलाकार हैं. विचार, सृजन और व्यंजना तीनों दृष्टियों से उन्होंने नवीन दिया है—इस माने में वे स्रष्टा हैं, शिल्पकार हैं, विचारक हैं. प्रगतिवाद के एक विशिष्ट दौर में मूल्यवान् और महत्वपूर्ण लिख चुकने के बाद उन्होंने उसी सृजन को विशेष संवर्धन और रूप दिया है. प्रवाह और गति सुमन का जीवन-दर्शन है. इसलिए उनके अगले कृतित्व में नई जीवन-चेतना और सुचिन्तित विचारधारा के नए आयाम की खोज होने की संभावना है.—लेखक]

सुमन जन्मतः रूमानी संस्कारों के कवि हैं. उनके काव्य की मूल प्रेरणा ही प्रेम है—

'इतना याद कि दो नयनों को देख
हो उठा था मन उन्मन !
अनायास ही एक दिवस,
सूने में हृदय कर उठा गुन गुन.'
(विश्वास बढ़ता ही गया)

'हिल्लोल' की कविताएँ विरह और मिलन का आख्यान हैं. जीवन के यौवन-पट से प्रिय को झाँक लेने (जीवन के यौवन-पट से हम उनको झाँक चुके हैं—हिल्लोल) के बाद ही प्रेयसी का वियोग मन को गहरी वेदना के अनन्त सूने तीर पर छोड़ जाता है—'हिल्लोल' की अधिकांश कविताएँ इसी विकलता का उच्छ्वास हैं. कहीं उपालंभ, कहीं खिन्नता, कहीं चाह, कहीं आग्रह, कहीं दैन्य...

तमाम कविताओं में बेतरतीब विखरा है—'पत्थर के थे देव हमारे', 'राही एक वार फिर आना', 'तुमको भूलूँ भी तो कैसे', 'सच है मैंने प्यार न पाया' आदि गीत इन्हीं भावोर्मियों के सूचक हैं. ये सहज आत्माभिव्यक्तियाँ हैं. कवि ने अपने विषय मे ठीक ही कहा है—

> 'जीवन के सुख-दुःख, आशा-निराशापूर्ण क्षणों मे प्राणों को मथकर जो भी अर्द्धस्फुट तुतले शब्द आवेशवश अथवा स्वभावतः निकल पड़े, बिना किसी आवरण के आपके समक्ष प्रस्तुत हैं'.

ये आरंभिक कविताएँ सुमन की कवि-प्रतिमा और सुसंस्कृत स्निग्धता का आभास दे जाती हैं. यहाँ-वहाँ आरंभिक अनघड़ता को छोड़कर भाषा-शैली निर्दोप और सहज है. वैचारिक स्तर पर 'हिल्लोल'-काल के अंत मे कवि मे एक परिवर्तन दीख पड़ता है—जो उसकी भावी गति और दिशा का सूचक है. पंत की तरह वाला के 'बाल जाल' से अपने को मुक्त करने की इच्छा उसके भीतर जन्म लेती है—

> 'सुन्दरि मुझको बन्दी न करो
> अपने कुंचित कच - जालों मे'

छायावादी कवि प्रेम के वैयक्तिक-संसार से मुक्त होकर जिस तरह दुखी मानवता के प्रति संवेदित हो उठा था—आरंभ मे उसी प्रकार की प्रवृत्ति सुमन मे दीख पड़ती है. परन्तु छायावादियों से एक भिन्न, एकाग्र और प्रखर लीक की ओर सुमन अग्रसर हुए हैं—

> 'कुसुमों के पथ पर प्रणयी ने
> देखी नर मुंडों की माला
> स्नेह ममत्व स्वप्नवत्
> जलती घर घर सर्वनाश की ज्वाला.'
> (विश्वास वढ़ता ही गया)

प्रणय की भावना एकाएक 'चिर शोषित मानवता' के साथ अन्यायों का दमन करने मे वदल जाती है (चिर शोषित असहायों के संग अत्याचारों को दलना है—हिल्लोल) और—'प्राण, मुझको भूल जाना' अथवा 'साहस हो तो आओ तुम भी मेरा पंथ निभा दो थोड़ा'—जैसी पंक्तियाँ प्रिय को साथ लेकर अथवा उसे वही छोड़ कर, किसी भी दिशा में उस राह पर चल पड़ने का निश्चय है—जिस

पर असंख्य पीड़ित, आहत और सर्वहत मानव घिसट रहे हैं. इन्हीं में नई चेतना उत्पन्न करने का संकल्प इस कविकर्म को दिशा देता है—

'मुर्दों में प्राण फूंकने को
मेरी वाणी विह्वल आतुर'.
(प्रलय-सृजन)

'हिल्लोल' के तीन परवर्ती संकलन 'जीवन के गान', 'प्रलय-सृजन', 'विश्वास बढ़ता ही गया' इसी संकल्प और निष्ठा को अर्थवत्ता देते हैं. शोषित मानवता का हाहाकार, निर्लज्ज विषमता और कुत्सित, ओछे, गन्दे छलछन्दों (ये छलछन्द शोषितों के हैं, कुत्सित, ओछे, गन्दे) को ध्वस्त कर देनेवाले आक्रोश और विद्रोह के तीखे स्वर 'सुमन' के रोमेंटिक मन ने अत्यन्त आग्रह पूर्वक साधे हैं. इसे साधने में कवि को दो बड़ी मंजिलें तय करनी पड़ी हैं—'जीवन के गान' और 'प्रलय-सृजन' की. क्योंकि 'जीवन के गान' में प्रेम की आकांक्षाएँ रह-रह कर उभरती हैं और कवि का दृढ़ आस्थाओं वाला संकल्प उसे बार-बार लाँघ कर कर्तव्य की वेदी पर पहुँच जाता है. यद्यपि 'जीवन के गान' में प्रगतिशील सुमन के सारे स्वर सन्निहित हैं, तथापि वे उसकी संवेदना और आत्माभिव्यंजना के अंग नहीं हो पाये हैं. एक सतहीपन उनमें जगह-जगह झलक जाता है. एक बिखराव, भटकन और विकल अतृप्ति की बहुआयामी कविताएँ इसमें संगृहीत हैं.

'प्रलय-सृजन' तक आते-आते सम्पूर्ण विकल्प समाप्त हो गये हैं. 'गच्छति पुरः शरीरं धावति पश्चात् असंस्तुतं चेतः' (कालिदास) वाले विभाजित व्यक्तित्व की कोई झलक इस रचना में नहीं मिलती. उसका कर्तव्य और आस्था दोनों एक ही दिशा में प्रवृत्त हुई हैं. कवि शोषकों को चुनौती देता, दुर्बलों का आह्वान करता और विषमता को ध्वस्त करनेवाले स्वरों को मुखर करता है. परन्तु अभी आवेग और विकलता इतनी अधिक है कि चिन्तन और संवेदना के स्तर पर बिना पचे हुए विचारों को वह उछाल देता है. इससे कवि के अन्तर्हित आवेश का ही पता चलता है. उसमें इतनी जल्दबाजी है कि वह साम्यवादी नारों को ज्यों का त्यों झंडे की तरह उठा लेता है. भारतीय परिवेश में उस चिंतन को कहाँ तक इस्तेमाल किया जा सकता है. अपने देश में शोषण के कितने आयाम और स्तर हैं. हमारी समस्याएँ और संस्कार किस माने में रूसी समस्याओं और संस्कारों से भिन्न हैं—इन्हें तोलने और समझने का कवि को अवसर नहीं मिला है. परन्तु इससे उसके इरादे पर शंका नहीं की जा सकती. उसकी इच्छा और प्रयत्न निर्मल हैं. वह रूस की प्रशंसा करता है. स्तालिनग्राड को खड़े रहने की हिम्मत बँधाता

है—तो इसका यह आशय नहीं है कि उस समय उसकी दृष्टि में 'दिल्ली' नहीं है, या कि वह अंग्रेजों का विकल्प रूसियों को समझता है या कि वह पार्टी-आदेश से ऐसी बातें उछाल रहा है. ये बातें कदाचित् ऐसे ही लोग कहते हैं जिन्हें साहित्य-धारा और वैश्विक प्रवाह का ज्ञान नहीं है. अपने ही विचारों को ढहाकर नए विचार खड़े करना, नया परीक्षण करना और उसमें से अनुकूल ग्रहण करना, प्रतिकूल को अस्वीकार करना फिर नवीनता लाना—यह सब व्यावहारिक और वैचारिक स्तर पर होता आया है. अतः हम किसी भी चीज़ का निर्णय उसमें निहित मूल अभिप्रायों के आधार पर करते हैं. सुमन ने रूस की स्तुति इसलिए की थी कि वह उसे नव-संस्कृति का अग्रदूत और मनुष्यता की आशा का आधार मानता है—

'नव संस्कृति के अग्रदूत हे,
पद-दलितों की आश
एक तुम्हारी गति पर अटकी
मानवता की श्वास.'

प्रगतिशील साहित्य की समीक्षा भी उसी सतही ढंग से हुई है, जिस ढंग से इसकी आरम्भिक कविताएँ रची गईं. परन्तु इस समीक्षा ने प्रगतिशील कवियों के ऊफान को नहीं समझा और राजनीतिक आशय का चलतू आरोप लगा दिया. इस प्रकार उसने अपना दृष्टि-दारिद्र्य ही दिखाया. हर पार्टी की सभा में कुछ नौसिखिए गवैये खड़े होकर फालतू पंक्तियाँ पढ़ा करते हैं—पर ये कविताएँ नहीं होतीं. **प्रगतिशील आंदोलन को कम्युनिस्ट गवैयों के आधार पर आँकना साफ-साफ उथलापन है.** साथ ही सृजन-प्रक्रिया को विकास के स्तर पर समझे बिना कवि की आरम्भिक रचनाओं के आधार पर उसके विषय में अन्तिम बात कहना भी अप्रामाणिक है. कवि जयशंकर प्रसाद क्या हैं—'आँसू', 'लहर' और 'कामायनी'. अब कोई उन्हें 'चित्राधार', 'कानन कुसुम', 'प्रेम-पथिक' और 'झरना' मानकर उनका मूल्यांकन करे तो उसे क्या कहा जायेगा ? सुमन के विषय में भी यही हुआ है. प्रगतिवादी सुमन का मूल्यांकन हिन्दी में लोगों ने 'जीवन के गान' और 'प्रलय-सृजन' के आधार पर किया है. जब कि प्रगतिशील सुमन का सर्वांगीण परिष्कृत और परिपक्व स्वरूप 'विश्वास बढ़ता ही गया' में व्यक्त हुआ है. इसके पूर्व की रचनाएँ उभरते कवि-रूप को समझने में सहायता करती हैं और उन सोपानों और संघर्षों को व्यक्त करती हैं—जिनमें से कवि गुजरा है. सृजन प्रक्रिया के सम्बन्ध में स्वयं सुमन का कथन है—

'जब हाथ बिठालोगे सौ-सौ साँचों में
कंचन पिघलेगा जब सौ-सौ आँचों में
तब एक रेख का कहीं भराव भरेगा
तब एक रूप का आकर्षण निखरेगा.'

चिन्तन और परिवेश की समझ को संवेदना में विनिमज्जित कर देने का काम गम्भीर साधना का है; जो किसी कवि की परिनिष्ठित कृति में ही देखा जा सकता है. आश्चर्य है कि सुमन को समझने की भ्रांति का अन्त अबतक नहीं हुआ है. कोशकार और इतिहासकार भी जब ऐसी गहरी भूलें करते हैं, तो तरस आता है. यहाँ मैं 'हिन्दी साहित्यकोश' और दो नए इतिहासों के उद्धरण दे रहा हूँ; जिसमें 'विश्वास बढ़ता ही गया' का उल्लेख तक नहीं है, जब कि इस कृति को 'देव'-पारितोपक भी मिल चुका है—और यह सुमन का सर्वश्रेष्ठ प्रगतिशील संकलन है. इतना ही नहीं यह हिन्दी-प्रगतिशील कविता की एक उपलब्धि भी है—

"सुमन क्रान्तिकारी हैं. उनके काव्य में युगचेतना जाग्रत है और वे विश्व के साथ चलकर समुन्नत होने की कामना करते हैं. 'हिल्लोल' में युवा हृदय की उत्तेजना के साथ क्रान्ति के दबे हुए स्वर हैं; जीवन के गान मे कवि वर्तमान परिस्थितियों से असन्तुष्ट और क्षुब्ध होकर विद्रोह करता है. प्रलय-सृजन में कवि विप्लवी हो जाता है. सुमन का दृष्टिकोण मार्क्स-वादी है. 'मास्को अब भी दूर है' और 'चली जा रही है बढ़ी लाल सेना', इनकी प्रगतिशील काव्यधारा की महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं. मानववाद इनका मूल धरातल है और मनुष्य की जनवादी परम्परा मे इनका अखण्ड विश्वास है." (हिन्दी साहित्यकोश—भाग १, पृ० ४६८)

'हिल्लोल उनका प्रथम काव्य-संग्रह है, जिसमें जीवन के यौवन का ज्वार दिखाई पड़ता है. जीवन के गान संग्रह में वे अपनी दिशा बदल देते हैं और व्यक्तिगत जीवन की परिधि से निकल कर सामान्य मानव-जीवन के उत्थान-पतन में सहानुभूति प्रकट करते हैं. 'प्रलय-सृजन' और 'पर आँखें नहीं भरीं' आदि काव्य-संग्रहों मे सुमनजी का संवेदनशील हृदय स्पष्ट होता है, जिसको देखने पर लगता है कि उनकी कविता में एक वर्ग-विशेष की संस्थिति नहीं है बल्कि उसका संबंध सामान्य मनुष्यता से है.'

—डॉ० राममूर्ति त्रिपाठी
हिन्दी साहित्य इतिहास, (पृ० ४३८)

'शिवमंगल सिंह बलात आरोपित कवि नहीं, अपितु वास्तविक कवि हैं. इनके काव्य-संग्रहों में 'हिल्लोल', 'जीवन के गान', 'प्रलय-सृजन' आदि उल्लेखनीय हैं'

—डॉ० गणपति गुप्त

हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, (पृ० ७४७)

इस समीक्षा की यही त्रासदी है कि जो उल्लेखनीय है, वह अदृश्य है और जिनका कामचलाऊ उल्लेख से सामान्यतः काम चल सकता है. उन्हें बोल्ड लैटर्स में उभारा गया है.

'विश्वास बढ़ता ही गया' में कवि में वैचारिक रूप से गहराई और अभिव्यंजना शिल्प की दृष्टि से प्रौढ़ता और परिमार्जन आया है. कवि-कर्म को पत्रकारिता और भाषण से अनुभूति और व्यंजना के आधार पर पृथक् किया जा सकता है, यह गहरी समझ इसी काल की उपलब्धि है—

'अन्य मानव और कवि में है बड़ा कोई न अन्तर
मात्र मुखरित कर सके मन की व्यथा, अनुभूति के स्वर.'

इस कृति में कवि ने भाववाद और वस्तुवाद का समन्वय किया है, विदेशी विचार को भारतीय संस्कृति और परिवेश से जोड़ा है; पूँजीवाद के विरुद्ध आक्रोश को साम्राज्यवाद के विरोध का अस्त्र बनाया है. धर्म, जाति और मानसिक ग्लानि के मूल स्रोतों को समझकर उन पर प्रहार किया है. इस माने में ये राष्ट्रीय रचनाएँ हैं. इसी संकलन में मानवतावाद और जीवन के शिवत्व के स्वरों को प्राथमिकता मिलती है. 'जीवन के गान' और 'प्रलय-सृजन' में जिन विषयों पर उसने कविताएँ की हैं; उन्हें अनुभूति के स्तर पर परिवर्तित कर दिया है. इसी संकलन में सुमन की सबसे महान् कविता 'जल रहे हैं दीप जलती है जवानी' है. 'निराला' के प्रति हिन्दी की सर्वोत्कृष्ट समर्पिति है, प्रगतिशील साहित्य के लिए किए गए संघर्षों का इतिहास है; वैयक्तिक प्रेम और मानवीय संवेदना के बीच की अंतर्निहित शृंखला को समझा है; मार्क्सीय द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद को भारतीय भावना के अनुरूप रूपायित किया है और एक सुष्ठु प्रगतिवादी शिल्प की रचना की है.

इस संकलन और आगामी संकलन 'पर आँखें नहीं भरीं' की कुछ कविताओं के आधार पर सुमन को प्रगतिवादी कवियों की प्रथम पंक्ति में विशिष्ट स्थान पर स्थापित किया जा सकता है.

छायावादी युग से ही प्रगतिवादी रचनाओं का आरंभ हो गया था. पंत और निराला के काव्य में दुखी मानवता के प्रति गहरी संवेदना है. 'निराला' प्रगतिवादी काव्य के सच्चे अर्थों मे पुरस्कर्ता है. लेकिन प्रगतिवाद की केन्द्रीय धारा के उल्लेख्य कवि हैं—**केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, शिवमंगल सिंह सुमन, डॉ० रांगेय राघव, त्रिलोचन शास्त्री और डॉ० रामविलास शर्मा.**

सुमन का अपना एक निराला अंदाज है. उक्त कवियों में यदि नागार्जुन अपने साफ, तीखे और तेजस्वी व्यंग्य के लिए इस धारा में अनुपम हैं, केदारनाथ अग्रवाल अपने विम्बों, चित्रों और ग्राम्य-जीवन के सहज चित्रण के लिए विख्यात हैं, तो सुमन अपनी प्रवाहपूर्ण अभिव्यंजना, काव्यमय उद्‌वोधन, साम्यवादी दर्शन को भारतीय संस्कृति और चेतना में अनुस्यूत करने और प्लेटफार्म को काव्य-मंच वना देने में अपना सानी नहीं रखते. लम्वी कविताओं की साधना और प्राणवत्ता सुमन को छोड़कर किसी प्रगतिवादी कवि में नहीं हैं. नागार्जुन के पास वह विशिष्ट भाषा-साधना, प्रवाह, ओज और दो विरोधों के समन्वय की सुमन की-सी सामर्थ्य नहीं है और केदार में प्रगतिवादी धारणा के काव्य-रूप देने की उतनी सामर्थ्य नहीं है, क्योंकि जहाँ कहीं वे इस दिशा की ओर प्रवृत्त होते हैं—तुरन्त सतही हो जाते हैं. डॉ० रांगेय राघव, त्रिलोचन शास्त्री और डॉ० रामविलास शर्मा इस खेमें की दूसरी पंक्ति के कवि हैं.

'विश्वास वढ़ता ही गया' के कवि ने केवल तोड़ा ही नहीं वनाया भी है. स्थापना की है—नकार की भूमि पर नव निर्माण किया है. इसके वाद पुनः वह प्रेम की एकांतिक भूमि पर नए और प्रौढ़ स्वर के साथ आरोहण करता है.

'पर आँखें नहीं भरीं' कवि सुमन की रोमेंटिक भावधारा की उत्कृष्ट स्मारिका है. किन्तु 'हिल्लोल' की तरह अव केवल उसी एक धारा में वह वह नहीं सकता था. अव उसके साथ एक व्यापक अनुभूति, निरीक्षण और जीवनानुभव थे. इन सवकी झलक 'पर आँखें नहीं भरीं' में मिलती हैं. संयोग-वियोग के भाव-विभोर अनेक स्वरों के साथ जीवन के मूल्यांकन (साँसों का हिसाव), साधना की गरिमा (कलाकार के प्रति), प्रकृति की विविध रूपभंगिमा का साक्षात्कार (तीन चित्र, चेरापूँजी) और अनेक सूक्ष्म-जटिल अनुभूतियों (टूटी डोर, फागुन में सावन) का संभार है. 'पर आँखें नहीं भरीं' का एक अतिरिक्त भाग है—'पर आँखें भरीं-भरी' इसमें महात्मा गांधी पर लिखी छः कविताएँ हैं. हिंसा को आपत्‌धर्म कहनेवाला विद्रोही कवि गांधी के परम साहस, सदाशय और महान् सफलता से स्तव्ध रह गया है. यह संवेदना की गहरी सतहों में घटित हुआ है—

इसलिए कविताएँ गाँधी पर लिखी श्रेष्ठ कविताओं में अपना स्थान रखती हैं. इससे कवि के मानववादी विचारों में प्रक्रिया के स्तर पर उभरा अंतर ज्ञात होता है और ध्वंसात्मक पक्ष से इतर पक्ष का आरंभ होता है. 'विश्वास बढ़ता ही गया' का 'सर्वहारा वामन' इस कृति में 'गांधी' बन गया है. अर्थात् कवि के अवचेतन में गांधी समस्त लघुमानवों का प्रतीक हो गए हैं—

'भू सुत जगे तीन डग में,
वामन ने तीन लोक फिर नापा.'
(विश्वास बढ़ता ही गया)

× × ×

'डगमग - डगमग अहि - कोल - कमठ
नप गये तुम्हारे तीन डगों में नभ-जल-थल'

(पर आँखें भरीं भरीं)

मानवता के कल्याण का आधार कवि को गांधी के व्यक्तित्व में दिखाई दिया. यह वैचारिक परिवर्तन कवि की पूरी विचारधारा को एक नया अर्थ देता है.

'विंध्य-हिमालय' अनुभूति और अभिव्यक्ति की नई दिशा का संकेत है. इसमें किसी भी आग्रह को छोड़कर मुक्त रूप से अनुभूत क्षणों, प्रसंगों का चित्रण है. हिमालय के सान्निध्य मे रहकर प्रकृति के विराट्, विविध और रम्य जीवन को जीने से कविता में प्रकृति विषयक नए आयामों का उभरना स्वाभाविक था. इसमें सुमन का उद्बोधन, रोमांस, चिंतन, आवेश, एकत्र है. परन्तु शिल्प की दृष्टि से सहज भाषा, मुक्त छंद, सामासिक शैली और अनुभूति के स्तर पर अंतर्मुखता और आत्मावलोकन की प्रवृत्तियाँ विशेष रूप से उभरी हैं. इस संग्रह की श्रेष्ठ कविताएँ हैं—'चेतना का मूल' (जिसमें सुमन पढ़ते हुए निराला की प्राणवत्ता का स्मरण आ जाता है) माँ गई, 'युग की गायत्री', 'काठमांडू की पहली साँझ,' 'अंतराल' आदि एक-सी शैली और प्रवृत्ति के गीत गा लेने के पश्चात् अभिव्यक्ति की नई दिशाएँ खोजने से कवि में ताजगी और नवीनता आती है. इसी ताजगी और नवीन आरोहण की दृष्टि से 'विंध्य-हिमालय' का महत्व है.

यह नहीं कहा जा सकता कि सुमन जीवन का सबसे महत्वपूर्ण लिख चुके हैं. उन्होंने प्रगतियुग की संवेदनाओं को भरपूर सामर्थ्य से ग्रहण कर उसे श्रेष्ठ अभिव्यक्ति दी है और वे सच्ची प्रगतिवादिता को वाणी देने वाले कलाकार हैं.

विचार, सृजन और व्यंजना तीनों दृष्टियों से उन्होंने नवीन दिया है—इस माने में वे स्रष्टा हैं, शिल्पकार हैं और विचारक हैं. प्रगतियुग के एक विशिष्ट दौर में मूल्यवान् और महत्वपूर्ण लिख चुकने के बाद उन्होंने उसी सृजन को विशिष्ट संवर्धना और रूप दिया है. फिर भी वे कविताएँ आज इतिहास बन चुकी हैं. यदि सुमन चाहते तो वही धारा नई चेतना के साथ चल सकती थी. मुक्तिबोध ने जिस तरह अपनी प्रगतिशील आस्था को नई कविता का शृंगार बना दिया है या नागार्जुन आज भी राष्ट्र और समाज पर तीखे व्यंग्य करने वाले सजग कलाकार बने हुए हैं, उसी तरह सुमन भी अपने वैचारिक मंथन और जागरूक दृष्टि को सर्वथा नई संवेदना दे सकते हैं. सतह के नीचे का जो इतिहास है, उससे अपने मन का तार जोड़ना—बाहर के सब कुछ समतल से अपने को जोड़ने से ज्यादा महत्वपूर्ण और गम्भीर कार्य है. ऐसा कवि दिखावटी राजनीति और कपड़ा चढ़े कंकाल की खोल उघाड़ सकता है.

सुमन अपने पूरे व्यक्तित्व और कर्तृत्व में गति और प्रवाह के प्रति प्रतिबद्ध हैं. उन्होंने बार-बार कहा है कि—

'जब तक हाथ पैर चलते हैं
जब तक वाणी बोल रही है
अथ-इतिहीन कर्ममय पथ पर
भार नहीं बन सकता जीवन.'

× × ×

'यह स्वर्ग नर्क विवेचना,
मन का अनोखा कृत्य है.
है सत्य केवल एक गति
बाकी समस्त अनित्य है.'

(प्रलय-सृजन)

× × ×

मिट्टी की सोंधी सुगन्ध सम गमक उठो सहसा
बूँद-बूँद को जोड़, शिलाएँ तोड़ अबाध बहो

(विश्वास बढ़ता ही गया)

× ×

मैं चलता जा रहा,
राह के दृश्य बदलते जाते हैं
(पर आँखें नहीं भरीं)

× × ×

मैं शिप्रा-सा ही तरल-सरल बहता हूँ
(विंध्य-हिमालय)

'पर आँखें नहीं भरीं' की भूमिका में सुमन ने अपने जीवन-दर्शन का संकेत देते हुए सतत प्रवाह को ही अपना धर्म स्वीकारा है—

> 'बद दिमागों की न पहले कमी थी न अब है पर युग का कारवाँ अपनी चाल से चला जा रहा है. अगल-बगल की आवाजों का जवाब देने के लिये रुकेगा तो पड़ाव से मोह हो जाएगा, सदा से होता रहा है. रफ्तार बढ़ जाने पर पाँचवें सवार अपने आप पीछे छूट जाएँगे. गनीमत इसी में है कि फतवे देने के चक्कर में न पड़ कर गति बनाये रखने के प्रति चौकन्ना रहा जाए, सिपाही की तरह.'

इसलिए यह आशा की जा सकती है कि शिवमंगल सिंह सुमन का अगला कृतित्व नई जीवन-चेतना से सम्पन्न होगा और उनकी सुचिंतित विचारधारा अभिव्यंजना के नये स्रोतों की खोज करती रहेगी.

परिशिष्ट

सतह का इतिहास

- **जन्म :**

  श्रावण शुक्ला—४ शनिवार, संवत् १९७२ विक्रमाब्द (१८३७ शकाब्द)
  दिनांक १४ अगस्त १९१५ ईसाब्द

- **जन्मस्थान :**

  झगरपुर. (म० प्र०)

- **शिक्षा :** —

  एम० ए० (हिन्दी) प्रथम श्रेणी. बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय.
  डी० लिट० (गीतकाव्य का उद्गम-विकास और हिन्दी साहित्य में उसकी परम्परा)

- **सेवाएँ :**

  * प्राध्यापक हिन्दी-विभाग, विक्टोरिया कॉलिज, ग्वालियर (म० प्र०)
    सन् १९४२ से १९४५ ईसाब्द

  * प्राध्यापक एवं अध्यक्ष हिन्दी-विभाग, माधव कॉलिज, उज्जैन (म० प्र०)
    सन् १९४८ से १९५४ ईसाब्द

    (सन् ४५ से ४८ तक डी० लिट० के लिए शोधार्थ अवकाश लेकर वाराणसी-निवास)

  * प्राध्यापक एवं अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग, होल्कर कॉलिज, इन्दौर (म०प्र०)
    सन् १९५४ से ५६ ईसाब्द.

  * सूचना तथा सांस्कृतिक सहचारी, भारतीय दूतावास, काठमांडौ, नेपाल.
    सन् १९५६ से १९६१ ईसाब्द.

  * प्राचार्य, माधव महाविद्यालय, उज्जैन (म० प्र०)
    सन् १९६१ से जुलाई १९६८ ईसाब्द.

    (इसी बीच विक्रम विश्वविद्यालय की हिन्दी समिति के अध्यक्ष एवं कलासंकाय के डीन)

  * कुलपति, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म० प्र०)
    जुलाई सन् १९६८ ईसाब्द से......

सम्प्रति : कुलपति पद पर समासीन

- यात्राएँ :

  * सामान्यतः सारे देश का भ्रमण समय-समय पर किया.

  * देशांतर :

    - नेपाल (सांस्कृतिक सहचारी के रूप में रहे)
    - मारीशस, नैरोबी (दक्षिण अफ्रीका)
    - रूस.

- कृतियाँ :

  * काव्य-संग्रह :

हिल्लोल	सन् १६३६ ईसाब्द.
जीवन के गान	सन् १६४१ ईसाब्द.
प्रलय-सृजन	सन् १६४४ ईसाब्द.
विश्वास बढ़ता ही गया	सन् १६५५ ईसाब्द.
पर आँखें नहीं भरीं	
विंध्य हिमालय	सन् १६६६ ईसाब्द.
माटी की बारात (प्रकाश्य)	

  * गद्य :

    - महादेवी की काव्य-साधना, संवत् २००८ विक्रमाब्द. (समीक्षा)
    - 'गीतिकाव्य का उद्गम-विकास और हिन्दी मे उसकी परंपरा' (शोध प्रबंध) (प्रकाश्य)
    - पत्र-पत्रिकाओं में फुटकर निबन्ध, लेख, टिप्पणियाँ आदि.